पूज्य
गुरुवर
के
श्री चरणों
में

बुद्ध-वचन

संग्रहकर्ता

महास्थविर ञानातिलोक

अनुवादक

भिक्षु आनन्द कौसल्यायन

प्रथम संस्करण } बुद्धाब्द २४८० { मूल्य ।=)

पूज्य

गुरुवर

के

श्री चरणो

में

भूमिका

बुद्ध धर्म के सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थो—सूत्र-पिटक, विनय-पिटक तथा अभिधर्म-पिटक मे भगवान् बुद्ध तथा उनके शिष्यो के जो उपदेश सगृहीत है वह सभी परम्परा से बुद्ध-वचन माने जाते है। सूत्र-पिटक मे साधारण बात चीत के ढग पर दिए गये उपदेश है, विनय-पिटक मे भिक्षुओ के नियम-उपनियम है और अभिधर्म-पिटक मे है बुद्ध-दर्शन अपने पारिभाषिक शब्दो मे।

पालि वा मागधी भाषा के यह ग्रन्थ अपनी अर्थ-कथाओ (=टीकाओ) सहित लगभग तीन महाभारत के बराबर है। बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद की तीन सगीतियो (=भिक्षु सम्मेलनो) मे इस वाङमय का सगायन हुआ और प्रथम शताब्दी मे राजा वट्टगामणी के समय मे सिहल मे लेख-बद्ध किया गया।

विद्वानो ने त्रिपिटक की भाषा और महाराज अशोक के शिलालेखो की भाषा पर तुलनात्मक विचार किया है। उनमे से कुछ का कहना है कि अशोक के शिलालेखो की मागधी मे प्रथमा विभक्ति मे 'ए' आता है और त्रिपिटक की पालि मे 'ओ'। फिर अशोक के शिलालेखो मे 'र' की जगह 'ल' का प्रयोग है। इसी प्रकार अशोक के शिलालेखो मे 'श' का प्रयोग भी है, जब कि त्रिपिटक की पालि मे केवल 'स' ही है। इन कुछ बातो को लेकर कोई कोई विद्वान् कहते है कि मागधी भाषा और चीज है, और पालि बिल्कुल और।

इस प्रकार उनकी दृष्टि मे त्रिपिटक का बुद्ध-वचन होना सन्दिग्ध है। लेकिन यदि वे इस बात पर विचार करे कि एक दो अक्षरो के प्रयोग का भेद तो पालि के सिहल मे जाकर लिखे जाने से वहाँ सिहालियो की अपनी

भाषा से प्रभावित हो जाने के कारण भी हो सकता है और अशोक के पूर्वी शिलालेखो मे और 'पालि' मे कोई भेद नही, तो उन्हे 'पालि' को बुद्ध-वचन मानने मे उतनी आपत्ति न होगी।

और हमारा तो कहना केवल इतना है कि जो भाषाएँ इस समय उपलब्ध है, उनमे पालि-त्रिपिटक की भाषा से बढ कर हमे बुद्ध के समीप ले जाने वाली दूसरी भाषा नही, जो ज्ञान त्रिपिटक मे उपलब्ध है उस ज्ञान से बढकर हमे बुद्ध-ज्ञान के समीप ले जाने वाला दूसरा ज्ञान नही। जहाँ तक बुद्ध के व्यक्तित्व का सम्बन्ध है, उसका सब से बडा परिचायक त्रिपिटक ही है।

प्रश्न हो सकता है कि त्रिपिटक तो बुद्ध के ५०० वर्ष बाद लिपिबद्ध किया गया। इतने अर्से मे उसमे कुछ मिलावट की काफी सम्भावना है। हो सकता है, लेकिन फिर त्रिपिटक पर किस दूसरे साहित्य को तरजीह दे। यदि यह मान भी लिया जाये कि बुद्ध की अपनी शिक्षाओ के साथ कही कही त्रिपिटक मे कुछ ऐसी दूसरी शिक्षाये भी दृष्टि-गोचर होती है जिनकी सगति बुद्ध की शिक्षाओ से आसानी से नही मिलाई जा सकती, तो भी हम बुद्ध की शिक्षाओ के लिए त्रिपिटक को छोड कर और किस दूसरे साहित्य की शरण ले?

भाषा और भाव दोनो की दृष्टि से पालि वाङमय हमे बुद्ध के समीपतम ले जाता है। जितना समीप यह ले जाता है, उतना समीप कोई दूसरा साहित्य नही, और जहाँ यह नही ले जाता वहाँ किसी दूसरे साहित्य की गति नही।

पालि-वाङमय के उस हिस्से का जिसे हमने ऊपर त्रिपिटक या बुद्ध-वचन[1] कहा है विस्तार इस प्रकार है—

---

[1] सिहल, स्याम, बर्मा—इन तीनो देशो के अक्षरो में त्रिपिटक उपलब्ध है। सिहल की अपेक्षा स्याम और बर्मा में सम्पूर्ण साहित्य आसानी

१. सुत्तपिटक, जो निम्नलिखित पाँच निकायो मे विभक्त है—
(१) दीघनिकाय, (२) मज्झिमनिकाय, (३) सयुत्तनिकाय, (४) अगुत्तरनिकाय, (५) खुद्दकनिकाय
खुद्दकनिकाय मे १५ ग्रन्थ हे—
(१) खुद्दक पाठ, (२) धम्मपद, (३) उदान, (४) इतिवुत्तक, (५) सुत्तनिपात, (६) विमान वत्थु, (७) पेत वत्थु, (८) थेर-गाथा, (९) थेरी-गाथा, (१०) जातक, (११) निद्देस, (१२) पटिसम्भिदामग्ग, (१३) अपदान, (१४) वुद्धवस, (१५) चरियापिटक।
२ विनयपिटक, निम्नलिखित भागो मे विभक्त है—
(१) महावग्ग, (२) चुल्ल वग्ग, (३) पाराजिक, (४) पाचित्तिय, (५) परिवार।
३. अभिधम्म पिटक, मे निम्नलिखित सात ग्रन्थ है—
(१) धम्म सगनी, (२) विभग, (३) धातुकथा, (४) पुग्गलपञ्ञति, (५) कथावत्थु, (६) यमक, (७) पट्ठान।

से मिल सकता है। बर्मा के मॉडले नगर में तो सारा का सारा त्रिपिटक कई सौ शिला-लेखो पर अकित है। रोमन-लिपि मे पालि-टेक्स्ट सोसाइटी की ओर से छप चुका है। देवनागरी अक्षरो मे शीघ्र छपेगा, ऐसी आशा और प्रयत्न है।

कई सज्जन प्राय पूछते है कि एक सस्कृतज्ञ के लिये पालि कितनी कठिन होगी? कितने दिन मे सीखी जा सकती है? इसका उत्तर यही है कि किसी भी भाषा का अभ्यास यूँ तो अपने अध्यवसाय पर ही निर्भर है लेकिन सामान्यतया पालि में किसी भी सस्कृतज्ञ की गति शीघ्र ही हो सकती है। पालि सस्कृत से उतनी दूर नही है जितनी प्राकृत। प्राकृत में तो व्यञ्जन का स्वर भी हो जाता है लेकिन पालि में नही होता जैसे शकुन्तला का प्राकृत में सउन्दले हो जायगा लेकिन पालि में होगा केवल सकुन्तला।

त्रिपिटक का अध्ययन करने से पता चलता है कि अन्य धार्मिक ग्रन्थो की तरह 'बुद्ध-वचन' मे कुछ विशिष्ट प्रश्नो का उत्तर विद्यमान है। ठीक उन्ही और वैसे ही प्रश्नो का उत्तर नही, जैसे प्रश्नो का उत्तर अन्य ग्रन्थो मे देने का प्रयत्न किया गया है। क्योकि कुछ प्रश्नो के वारे मे वुद्ध कहते है—"भिक्षुओ, यदि कोई कहे कि मे तव तक भगवान् (वुद्ध) के उपदेश के अनुसार नही चलूँगा, जव तक कि भगवान् मुझे यह न वता दे कि ससार शाश्वत है, वा अशाश्वत, ससार सान्त है वा अनन्त, जीव वही है जो शरीर है वा जीव दूसरा है शरीर दूसरा है, मृत्यु के वाद तथागत रहते है, वा मृत्यु के वाद तथागत नही रहते—तो भिक्षुओ, यह बाते तो तथागत के द्वारा वे-कही ही रहेगी और वह मनुष्य यूँ ही मर जायगा।" (पृ २२)।

इन वे-कही=अव्याकृत वातो के सम्वन्ध मे हमे ध्यान रखना हे कि (१) वुद्ध ने कुछ वातो को अव्याकृत रक्खा है और (२) वुद्ध ने कुछ ही वातो को अव्याकृत रक्खा है। इस लिए एक तो हम जिन बातो को वुद्ध ने बे-कही (=अव्याकृत) रक्खा है, उनके वारे मे बुद्ध का मत जानने के लिए व्यर्थ हैरान न हो, दूसरे अपनी अपनी पसन्द की कुछ बातो, अपने पसन्द के कुछ मतो—जैसे ईश्वर और आत्मा आदि—को 'अव्याकृतो' की गिनती मे रख कर, अव्याकृतो की सख्या न वढाये।

ससार को किसने वनाया? कव बनाया? आदि प्रश्नो को वुद्ध ने नजर-अन्दाज किया, उनका उत्तर नही दिया—सो अकारण ही नही। उनका कहना था—"भिक्षुओ, जैसे किसी आदमी को जहर मे बुझा हुआ तीर लगा हो, उसके मित्र, रिश्तेदार उसे तीर निकालने वाले वैद्य के पास ले जावे। लेकिन वह कहे—'मै तव तक यह तीर नही निकलवाऊँगा, जव तक यह न जान लूँ कि जिस आदमी ने मुझे यह तीर मारा है, वह क्षत्रिय है, ब्राह्मण है, वैश्य है, वा शूद्र है,' अथवा वह कहे—'मै तव तक यह तीर नही निकलवाऊँगा, जव तक यह न जान लूँ कि जिस आदमी ने मुझे यह तीर मारा

है, उसका अमुक नाम है, अमुक गोत्र है,' अथवा वह कहे—'मै तव तक यह तीर नही निकलवाऊँगा, जव तक यह न जान लूँ कि जिस आदमी ने मुझे यह तीर मारा है, वह लम्वा है, छोटा है वा मँझले कद का है,' तो हे भिक्षुओ उस आदमी को इन वातो का पता लगेगा ही नही, और वह यूँ ही मर जाएगा।" (पृ० २३)

जिस एक प्रश्न को बुद्ध ने उठाया और जिसका उत्तर दिया है, उसका सम्वन्ध न केवल सभी मनुष्यो से है, किन्तु सारे जीवो से, न केवल सभी देशो मे है, वल्कि समस्त विश्व से, उसका सम्वन्ध अतीत से है, अनागत से है, वर्तमान से है। प्रश्न जितना सरल है, उससे अधिक व्यापक है। प्रश्न है, 'क्या हम दु खी है?' बुद्ध का उत्तर है, 'हाँ'। क्या इस दु ख से छूट सकते है? बुद्ध का उत्तर है, 'हाँ'।

प्राचीन और वर्तमान काल मे ऐसे मनुष्य रहे है और है जिनका मत है कि ससार मे पैदा हुए है तो उसमे अधिक से अधिक मजा उडाने की कोशिश होनी चाहिये। यही एक मात्र बुद्धिमानी है। इस 'बुद्धिमानी' मे और तो कोई दोप नही—दोप केवल इतना ही है कि अधिक से अधिक मजा उडाने को ही जीवन का परमार्थ वना लेने वालो के हिस्से मे आता है अधिक से अधिक दु ख। प्रत्येक 'मजे' को वह दुगना करते है, इस आशा से कि उन्हे दुगना मजा आएगा। लेकिन होता क्या है? आज शराव का एक प्याला नाकाफी मालूम देता है, कल दूसरा परसो तीसरा। एक दिन आता है कि वह शराव को केवल इस लिए पीते है क्योकि वह विना पिये नही रह सकते। यही हाल ससार के सभी विपयो, सभी भोगो का है। थोडे ही समय मे विपयो के भोगने मे तो कोई मजा नही रहता ओर न भोगने मे होता है दु ख, महान् दु ख। कैसी दयनीय दशा होती है तव भोगो के पीछे अन्धे हो कर भागने वालो की!!!

कुछ लोगो का कहना है कि ससार तो मिथ्या है, है ही नही—रस्सी मे सर्प का भान है। इस मिथ्या-भान को छोड कर जो वास्तविक अस्तित्व

है—सचिच्दानन्द स्वरूप ब्रह्म है—उस ब्रह्म को साक्षात् करना ही एक-मात्र परमार्थ है। छ इन्द्रियो से जिस ससार का प्रतिक्षण अनुभव हो रहा है, उसे मिथ्या कहे तो कैसे? और इस 'मिथ्या' के पीछे किसी दूसरे सत्य को स्वीकार करे तो कैसे? किस आधार पर? 'श्रुति-प्रतिपादित' होने के अतिरिक्त क्या और भी कोई प्रमाण है? और श्रुति की प्रामाणिकता मे क्या प्रमाण है?

ससार के भोगो को ही परम परमार्थ मानने वालो को यदि हम जडवादी =भोगवादी कहे, तो सासारिक वस्तुओ को सर्वथा मिथ्या मानने वालो को हम आत्मवादी वा ब्रह्म-वादी कह सकते है। बुद्ध का अपना वाद क्या है?

त्रिपिटक मे ससार का वर्णन दोनो दृष्टियो से है। साधारण आदमी की दृष्टि से भी और अर्हत्=जीवन्मुक्त की दृष्टि से भी। व्यावहारिक दृष्टि से भी ओर यथार्थ-दृष्टि से भी। साधारण आदमी की दृष्टि से ससार मे फूल भी है कॉटे भी है, दु ख भी है सुख भी है, लेकिन अर्हत् की दृष्टि से ससार मे कॉटे ही कॉटे है, दु ख ही दु ख है।

खुजली के रोगी को खाज के खुजलाने मे जो मजा आता है वह "न लड्डू खाने मे, न पेडे खाने मे।" खाज का खुजलाना उसके लिए मजा है, सुख है और खाज का न खुजलाना—यूँ ही खाज होते देते रहना कॉटे है, दु ख है। थोडी देर के लिए वह यह भूल जाता है कि स्वस्थ मनुष्य की कोई ऐसी भी अवस्था है जिसमे न खाज होती है, न खुजलाना।

खाज से पीडित आदमी के लिए खाज होना अवाञ्छनीय है, खुजलाना वाञ्छनीय। स्वस्थ आदमी दोनो से परहेज करता है। न उसे खाज होना प्रिय है, न खुजलाना। साधारण आदमी के लिए ससार के सुख वाञ्छनीय है, दु ख अवाञ्छनीय, अर्हत् दोनो को एक दृष्टि से देखता है। इन्द्रियो और मन की जिन चचलताओ को हम 'मजा लेना' कहते है, शान्त-चित्त अर्हत् के लिए वह सभी चञ्चलताये दु ख है।

त्रिपिटक मे यह जो बुद्ध ने बार बार कहा है कि "भिक्षुओ, दु ख आर्य-सत्य क्या है ? पैदा होना दु ख है, बूढा होना दु ख हे, मरना दु ख है, शोक करना दु ख है, रोना पीटना दु ख है, पीडित होना दु ख है, परेशान होना दु ख है, थोडे मे कहना हो तो पॉच उपादान स्कन्ध ही दु ख है," सो अर्हत् की ही दृष्टि से कहा है।

तब तो बुद्ध धर्म बिल्कुल निराशावाद ही निराशावाद है ? नही। निराशावाद कहता है दु ख है, और दु ख से छुटकारा नही, लेकिन बुद्ध-धर्म एक योग्य चिकित्सक की भॉति कहता है "दु ख है और दु ख से छुट-कारा है।" जो धर्म बिना किसी परमात्मा मे विश्वास के, बिना किसी परमात्मा के अवतार=पुत्र या पैगम्बर पर निर्भर्ता के, बिना किसी 'ईश्व-रीय ग्रन्थ' को मानने की मजबूरी के, बिना किसी पुरोहित आदि की आव-श्यकता के सभी दु खो का अत कर देने का रास्ता बताता है, उससे बढ कर आशावादी धर्म कौन सा होगा ?

हॉ तो इस दु ख-ससार का कारण क्या है ? ईश्वर ? बुद्ध कहते है "वह ईश्वर भी बडा खराब होगा जिसने (कुछ लोगो के मत मे) ऐसा दु खमय ससार बनाया।"

बुद्ध के मत मे दु ख का कारण हम स्वय है, हमारी अपनी अविद्या है, हमारी अपनी तृष्णा है। "भिक्षुओ, यह जो फिर फिर जन्म का कारण है, यह जो लोभ तथा राग से युक्त है, यह जो जही कही मजा लेनी है, यह जो तृष्णा है, जैसे काम-तृष्णा, भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा—यह तृष्णा ही दु ख के समुदय के बारे मे आर्य-सत्य है (पृ० ११)

ऊपर कह आये है कि बुद्ध का जो विशेष उपदेश है, वह केवल 'दु ख और दु ख से मुक्ति' का उपदेश है। "दो ही चीजे भिक्षुओ, मै सिखाता हूँ—दु ख और दु ख से मुक्ति"। (सयुत्त नि०)। प्रश्न होता है यह दु खी होने वाला कौन हे ? यह दु ख से मुक्त होने वाला कौन है ? आत्म-वादी दर्शनो से यदि यह प्रश्न पूछा जाए तो उनका तो सीधा उत्तर है 'जीव-आत्मा'।

लेकिन जब बुद्ध से पूछा जाता है कि 'आप कहते हैं 'मनुष्य दु ख भोगता है, मनुष्य मुक्त होता है, तो यह दु ख भोगने वाला, दु ख से मुक्त होने वाला कौन है ?" बुद्ध कहते हैं "तुम्हारा यह प्रश्न ही गलत है (न कल्लोऽय पञ्हो) प्रश्न यूँ होना चाहिये कि क्या होने से दु ख होता है। और उसका उत्तर यह है कि तृष्णा होने से दु ख होता है।" यदि आप फिर यह जानना चाहे कि तष्णा किसे होती है तो फिर बुद्ध का वही उत्तर है कि "तुम्हारा यह प्रश्न ही गलत है कि तृष्णा किसे होती है, प्रश्न यूँ होना चाहिये कि क्या होने से तृष्णा होती है" ? और इसका उत्तर यह है कि वेदना (=इन्द्रियो और विपयो के स्पर्श से अनुभूति) होने से तृष्णा होती है। इस प्रकार यह प्रत्ययो से उत्पत्ति का नियम (प्रतीत्य-समुत्पाद) सदा चलता रहता है। एक के होने से दूसरे की उत्पत्ति होती है, एक के निरोध से दूसरे का निरोध।

"अविद्या के होने से सस्कार, सस्कार के होने से विज्ञान, विज्ञान के होने से नाम-रूप, नाम-रूप के होने से छ आयतन, छ आयतनो के होने से स्पर्श, स्पर्श के होने से वेदना, वेदना के होने से तृष्णा, तृष्णा के होने से उपादान, उपादान के होने से भव, भव के होने से जन्म, जन्म के होने से बुढापा, मरना, शोक, रोना-पीटना, दु ख, मानसिक चिन्ता तथा परेशानी होती है। इस प्रकार इस सारे के सारे दु ख-स्कन्ध की उत्पत्ति होती है। भिक्षुओ, इसे प्रतीत्य-समुत्पाद कहते हैं।

अविद्या के ही सम्पूर्ण विराग से, निरोध से सस्कारो का निरोध होता है। सस्कारो के निरोध से विज्ञान-निरोध, विज्ञान के निरोध से नाम-रूप निरोध, नाम-रूप के निरोध से छ आयतनो का निरोध, छ आयतनो के निरोध से स्पर्श का निरोध, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध, वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध, तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध, उपादान के निरोध से भव-निरोध, भव के निरोध से जन्म का निरोध, जन्म के निरोध से बुढापे, शोक, रोने-पीटने, दुक्ख, मानसिक-चिन्ता तथा परे-

शानी का निरोध होता है। इस प्रकार इस सारे के सारे दु ख स्कन्ध का निरोध होता है।" (पृ० ३०)

तव प्रश्न होता है कि यदि यथार्थ मे कोई दु ख को भोगता है ही नही, तो फिर दु ख से मुक्ति का प्रयत्न व्यर्थ ? हाँ, सचमुच यदि हमे यह यथार्थ-दृष्टि उपलब्ध हो जाए कि 'जीव-आत्मा' नाम की कोई वस्तु नही, यह केवल हमारे अहङ्कार का एक सूक्ष्म प्रतिविम्व है, अवशेप है और हो जाए हमारे इस अहकार का सर्वथा नाश, तो फिर हमे दु ख से मुक्त होने का प्रयत्न करने की आवश्यकता नही।

उस अवस्था मे न दु ख रहेगा, न दु ख का भोक्ता, न प्रश्न की गुजा-यश रहेगी न उसके उत्तर की।

क्या यह जो दु ख का एकान्तिक निरोध है, जिसे निर्वाण कहते है जीते जी प्राप्त किया जा सकता है ? हाँ, इसी 'छ फीट के शरीर' मे प्राप्त किया जा सकता है। "भिक्षुओ, आदमी जीते जी निर्वाण को प्राप्त करता है, जो काल से सीमित नही, जिसके वारे मे कहा जा सकता है कि 'आओ और स्वय देख लो,' जो ऊपर उठाने वाला है, जिसे प्रत्येक बुद्धिमान आदमी स्वय प्रत्यक्ष कर सकता है।

"भिक्षु, जव शान्त-चित्त हो जाता है, जव (वन्धनो से) विल्कुल मुक्त हो जाता है, तव उसको कुछ और करना वाकी नही रहता। जो कार्य्य वह करता है, उसमे कोई ऐसा नही होता, जिसके लिए उसे पश्चात्ताप हो।"

इस प्रकार का अर्हत्व-प्राप्त भिक्षु जव शरीर छोडता है, तव उसके पाँच स्कन्धो का क्या होता है ? जिस कारण से उसका पुनर्जन्म होता, उस (तृष्ण-अविद्या) के नप्ट होने के कारण उसका पुनर्जन्म नही होता। ठीक उसी तरह जिस तरह विजली का मनका (Switch) ऊपर उठा देने से विजली की धारा (Electiic cuirent) रुक जाती है और वल्व वुझ जाता है, वैसे ही तृष्णा की धारा का निरोध होने से यह जो जन्म-मरण रुपी दिया जलता रहता है, वह वुझ जाता है। हम विजली के उदा-

हरण मे यह नही पूछते कि जो रोशनी थी वह क्या हुई, क्योकि हम जानते है कि रोशनी की उत्पत्ति का कारण तो बिजली की धारा थी, वह बन्द हो गई तो अब और रोशनी कैसे उत्पन्न हो, उसी प्रकार जब अविद्या-तृष्णा की धारा बन्द हो गई, तो फिर अब जन्म-मरण का दीपक कहाँ से जले ? उसका तो निर्वाण अवश्यम्भावी है।

तो बौद्ध पुनर्जन्म को मानते है ? हाँ, व्यवहार-दृष्टि से अवश्य मानते है। "भिक्षुओ जैसे गो से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी, घी से घी-मण्ड होता है। जिस समय मे दूध होता है, उस समय न उसे दही कहते है, न मक्खन, न घी, न घी का माडा। इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस समय मेरा भूतकाल का जन्म था, उस समय मेरा भूतलाल का जन्म ही सत्य था, यह वर्तमान और भविष्यत का जन्म असत्य था। जब मेरा भविष्यतकाल का जन्म होगा, उस समय मेरा भविष्यतकाल का जन्म ही सत्य होगा, यह वर्तमान और भूत काल का जन्म असत्य होगा। यह जो अब मेरा वर्तमान मे जन्म है, सो इस समय मेरा यही जन्म सत्य है, भूतकाल का और भविष्यतकाल का जन्म असत्य है।

"भिक्षुओ, यह लौकिक सज्ञा है। लौकिक निरुक्तियाँ है, लौकिक व्यवहार है, लौकिक प्रज्ञप्तियाँ है—इनका तथागत व्यवहार करते है, लेकिन इनमे फँसते नही।"

"जब आत्मा ही नही, तब पुनर्जन्म किसका ?"—यह एक प्रश्न है जो प्राय सभी पूछते है। इसका आशिक उत्तर ऊपर दिया जा चुका है। अधिक स्पष्टता और सरलता से कहने के लिए यह कहा जा सकता है कि जो कार्य्य अबौद्ध दर्शन आत्मा से लेते है, वह सारा कार्य्य बौद्ध दर्शन मे मन=चित्त=विज्ञान से ही ले लिया जाता है। आत्मा को जब शाश्वत, ध्रुव, अविपरिणामी मान लिया तो फिर उसके सस्कारो का वाहक होने की सगति ठीक नही बैठती, लेकिन मन=चित्त=विज्ञान तो परिवर्तन-

शील है, वह अच्छे कर्मो से अच्छा और बुरे कर्मो से वुरा हो सकता है। उसके सस्कारो का वाहक होने मे कोई आपत्ति नही।

धम्मपद की पहली गाथा है —

मनो पुव्वङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा
ततोन दु खमन्वेति चक्क व वहतो पद ।

सभी अवस्थाओ का पूर्व-गामी मन है, उनमे मन ही श्रेष्ठ है, वे मनोमय है। जव आदमी प्रदुष्ट मन से वोलता है वा कार्य्य करता है, तव दु ख उसके पीछे पीछे ऐसे हो लेता है जैसे (गाडी के) पहिये (वैल के) पैरो के पीछे पीछे।

तो भगवान् वुद्ध की शिक्षा के अनुसार इस प्रतिक्षण अनुभव होने वाले दु ख का अन्त किस प्रकार किया जा सकता है ? यही विचारवान वनकर, सदाचारी वनकर, चित्त की एकाग्रता का सपादन करके ।

धम्मपद की प्रसिद्ध गाथा है —

सव्व पापस्स अकरण ।
कुसलस्स उपसम्पदा ।।
सचित्त परियोदपन ।
एत वुद्धानसासन ।।

अशुभ कर्मो का न करना, शुभ कर्मो का करना और चित्त को कावू मे रखना—यही वुद्धो की शिक्षा है।

भिक्षु जिस समय दीक्षा ग्रहण करता है अपने आचार्य्य से कहता है कि सव दुखो का जो एकान्तिक-निरोध अथवा निर्वाण है, उसकी प्राप्ति के लिए यह कापाय वस्त्र देकर मुझे प्रव्रजित कर दे। निर्वाण या मोक्ष मनुष्य के वाहर की कोई ऐसी चीज नही है जिसके पीछे भाग कर यह उसे प्राप्त करता हो । मनुष्य जिस प्रकार स्वय स्वस्थ होता है, स्वास्थ्य को प्राप्त

नही करता, उसी प्रकार मनुष्य निर्वृत होता है, निर्वाण को प्राप्त नही करता।

और यह निर्वाण, भिक्षु ही प्राप्त कर सके—ऐसा नियम नही है। कोई भी हो स्त्री हो या पुरुप, गृहस्थ हो या प्रव्रजित—जिसका राग शान्त हो गया हो, जिसका दोप शान्त हो गया हो है, जिसका मोह शान्त हो गया है —वह निर्वाण-प्राप्त है।

दु ख और दु ख का एकान्तिक-निरोध—यही है सभी बुद्धो की शिक्षा का सार।

× × ×

यह 'बुद्ध-वचन' नाम से त्रिपिटक मे से जो छोटा सा सकलन किया गया है, इस सकलन का श्रेय है हमारे वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, पूज्य महास्थविर ज्ञानतिलोक को। आप जर्मन-देशीय है और लगभग पिछले ४० वर्प से सिहल (लका) मे है। आजकल आप वहाँ एक द्वीप-आश्रम (Island Hermitage) मे, सिहल के दक्षिणी हिस्से मे रहते है। एक दो वर्प आप जापान मे प्रोफेसर रहे और लडाई के दिनो मे काफी दिन अग्रेजी सरकार के जेल-खाने मे। जहाँ कही पालि के पाण्डित्य की चर्चा होती है, आपका नाम अति श्रद्धा से लिया जाता है।

कुछ वर्प हुए आपने पालि त्रिपिटक के उद्धरणो का यह सकलन, जो कि वाद मे जर्मन और अग्रेजी मे अनूदित होकर छपा, किया था। मुझे यह सकलन बहुत जॅचा, क्योकि यह वौद्धधर्म के परिचितो और अपरि-चितो दोनो के लिए समान रूप से काम की चीज हे। इसमे त्रिपिटक के उद्धरणो को इस तरतीव से सजाया गया है कि कोई एक वात दो वार नही आती और सब मिलकर एक क्रम-वद्ध शास्त्र का रूप धारण कर लेता है।

मेरी अपनी राय है कि बुद्ध-धर्म की सारी रूप-रेखा का समावेश इस छोटे से सकलन मे हो जाता है।

कई वर्प हुए, मैने इस सकलन के अग्रेजी रूपान्तर को पढा। तभी मेरी इच्छा हुई, इसे हिन्दी मे छपा देखने की। 'किसी न किसी को इसे

हिन्दी रूपान्तर देना ही चाहिये' सोच मैंने पहले उन सब पालि उद्धरणो को नागरी अक्षरो मे लिखा, जिनसे महास्थविर ज्ञानातिलोक ने जर्मन और अग्रेजी मे अनुवाद किया था। फिर मूल पालि से उनका हिन्दी अनुवाद किया। जर्मन से मै अनुवाद कर न सकता था, और एक ऐसे सग्रह का जिसका मूल पालि मे हो, अग्रेजी से अनुवाद करते लज्जा आती थी। हमारे अपने देश की भापा हो पालि, और हम उसका हिन्दी रूपान्तर देखे अग्रेजी के माध्यम द्वारा!

अनुवाद मे मैंने जल्दी नही की, जल्दी कर भी न सकता था। पुरानी बात को आज की भापा मे कहना सरल नही जान पडा। फिर भी मैंने अपनी ओर से कोशिश की कि मूल-पालि से भी चिपटा रहूँ ताकि केवल आजकल की भापा की धुन मे मूल-पालि के भाव से बिल्कुल दूर न जा पडूँ और आजकल की भापा से भी चिपटा रहूँ, जिसमे अनुवाद बिल्कुल 'मक्खी पर मक्खी मारना' न हो जाय।

अपने उद्देश्य मे कहाँ तक सफल हुआ, इसका मै स्वय अच्छा निर्णायक नही समझा जा सकता।

अनुवाद कर चुकने पर भाई जगदीश काश्यप जी के साथ सारा अनुवाद दुहरा लिया गया। उनकी सलाहो के लिए उन्हे धन्यवाद देते डर लगता है। अपने आपको कोई कैसे धन्यवाद दे?

पाठक कही कही कोष्ठक मे एक दो शब्द देखेगे, वे शब्द कोष्ठक मे इसलिए जोड दिये गये है कि उनसे विपय स्पप्ट हो जाय और वे शब्द मूल-पालि के भी न समझे जाये।

त्रिपिटक मे से जिस जिस स्थल से मूल-पालि के उद्धरण चुने गये है उन सब का सकेत उद्धरणो के आरम्भ मे किनारो पर दे दिया गया है —

म=मज्झिम निकाय

स=सयुत्त निकाय

दी=दीर्घ निकाय

ध=धम्मपद

अ=अगुत्तर निकाय

इ=इतिवुत्तक

उ=उदान

जिन शब्दो पर नोट देना आवश्यक प्रतीत हुआ है, उन्हे मोटे टाइप मे छाप दिया गया है और पुस्तक के अन्त मे व्याख्या स्वरूप दो शब्द लिख दिए गये है।

अलोपी-बाग
दारागज, प्रयाग
ति० २७-९-३७

आनन्द कौसल्यायन

विषय-सूची

उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध का नमस्कार है।

बुद्ध-वचन

भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध ने वाराणसी म (=बनारस) के ऋषिपतन मृगदाव मे अनुत्तर धर्मचक्र चलाया है। इस से पहले ऐसा धर्मचक्र लोक मे न किसी **श्रमण** ने, न किसी ब्राह्मण ने, न किसी देवता ने, न किसी **मार** ने और न किसी ब्रह्मा ही ने चलाया। कौनसा धर्मचक्र? यह जो चार **आर्य-सत्यो** का कहना है, यह जो चार आर्य-सत्यो का उपदेश करना है, यह जो चार आर्य-सत्यो का प्रकाशित करना है, यह जो चार आर्य-सत्यो का स्थापित करना है, यह जो चार आर्य-सत्यो का विस्तार करना है, यह जो चार आर्य-सत्यो का विभाजन करना है, और यह जो चार आर्य-सत्यो को उघाड कर दिखा देना है। कौन से चार आर्य-सत्यो को?

(१) दु ख आर्य-सत्य को, (२) दु ख समुदय आर्य-सत्य को,
(३) दु ख निरोध आर्य-सत्य को (४) दु ख निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग आर्य-सत्य को।

भिक्षुओ! जब तक मुझे इन चार आर्य-सत्यो का यूँ तेहरा करके **बारह प्रकार से** यथार्थ ज्ञान-दर्शन स्पष्ट नही हो गया, तब तक मैंने यह दावा नही किया कि मैंने देव और मार-सहित लोक मे, तथा श्रमण-ब्राह्मण और देव-मनुष्यो से युक्त प्रजा मे सब से बढ कर सम्यक् ज्ञान को पा लिया, लेकिन जब मुझे इन चार आर्य-सत्यो का यू तेहरा करके बारह प्रकार से यथार्थ ज्ञान-दर्शन स्पष्ट हो गया, तो मैंने दावा किया कि मैंने देव और मार सहित लोक मे, तथा श्रमण-ब्राह्मण और देव-मनुष्यो से युक्त प्रजा मे सब से बढ कर सम्यक् ज्ञान को पा लिया।

मैं इस धर्म को जान गया, यह गम्भीर है, दुष्करता से दिखाई देने वाला है, सूक्ष्मता से समझ में आने वाला है, शान्त है, प्रणीत है, (केवल) तर्क से अगम्य है, निपुण है और पंडित-जनों द्वारा ही जाना जा सकता है।

लोग आसक्ति में पड़े हैं, आसक्ति में रत हैं, आसक्ति में प्रसन्न हैं। इन आसक्ति में पड़े, आसक्ति में रत, आसक्ति में प्रसन्न लोगों के लिये यह बहुत कठिन है कि वह कार्य-कारण सम्बन्धी प्रतीत्य-समुत्पाद के नियम को समझ सके और उनके लिए यह भी बहुत कठिन है कि वह सभी संस्कारों के शमन, सभी चित्त-मलों के त्याग, तृष्णा के क्षय, विराग-स्वरूप, निरोध-स्वरूप निर्वाण को प्राप्त कर सके।

ऐसे भी प्राणी हैं जिन के चित्त पर थोड़ा ही मैल है, वे यदि धर्मोपदेश न सुनेंगे तो विनाश को प्राप्त होंगे।

वे लोग धर्म के समझने वाले होंगे।

---

(१)

दुःख-आर्य-सत्य

भिक्षुओ ! दु ख-आर्य-सत्य क्या है ? पैदा होना दु ख है, बूढा होना दी दु ख है, मरना दु ख है, शोक करना दु ख है, रोना पीटना दु ख है, पीडित होना दु ख है, चिन्तित होना दु ख है, परेशान होना दु ख है, इच्छा की पूर्ति न होना दु ख है, थोडे मे कहना हो तो **पाँच उपादान स्कन्ध** ही दु ख है।

भिक्षुओ ! पैदा होना किसे कहते है ? यह जो जिस किसी प्राणी का, जिस किसी योनि मे जन्म लेना है, पैदा होना है, उतरना है, उत्पन्न होना है, स्कन्धो का प्रादुर्भाव होना है, **आयतनो** की उपलब्धि है—इसे ही भिक्षुओ ! पैदा होना कहते है।

भिक्षुओ ! बूढा होना किसे कहते है ? यह जो जिस किसी प्राणी का, जिम किसी योनि मे बुढापे को प्राप्त होना है, दाँत टूटना है, बाल पकना है, चमडी मे झुर्री पडना है, आयु का खातमा है, इन्द्रियो का दुर्बल होना हे—इसे ही भिक्षुओ ! बूटा होना कहते है।

भिक्षुओ ! मरना किसे कहते है ? यह जो जिस किसी प्राणी का, जिस किसी योनि से गिर पडना=पतित होना है, पृथक् होना हे, अन्तर्धान होना है, मृत्यु को प्राप्त होना है, काल कर जाना है, स्कन्धो का अलहदा अलहदा हो जाना है, शरीर का फेक दिया जाना है—इसे ही भिक्षुओ, मरना कहते है।

भिक्षुओ ! शोक किसे कहते है ? यह जो जिस किसी विपत्ति से युक्त, जिस किसी पीडा मे पीडित मनुष्य का सोचना है, चिन्ता है, अन्दरूनी शोक है—इसे ही भिक्षुओ, शोक कहते है।

भिक्षुओ! रोना-पीटना किसे कहते है? यह जो जिस किसी विपत्ति से युक्त, जिस किसी पीडा से पीडित मनुष्य का रोना-पीटना है, चिल्लाना है—इसे ही भिक्षुओ! रोना-पीटना कहते है।

भिक्षुओ! पीडित होना किसे कहते है? यह जो शारीरिक दु ख है, शारीरिक पीडा है, शरीर सम्बन्धी क्लेश है, बुरी शारीरिक अनुभूति है—इसे ही भिक्षुओ! पीडित होना कहते है।

भिक्षुओ! चिन्तित होना किसे कहते है? यह जो मानसिक दु ख है, मानसिक पीडा है, मन सम्बन्धी क्लेश है, बुरी मानसिक अनुभूति है—इसे ही भिक्षुओ! चिन्तित होना कहते है।

भिक्षुओ! परेशान होना किसे कहते है? यह जो जिस किसी विपत्ति से युक्त, जिस किसी दु ख से दुक्खित मनुष्य का हैरान होना है, परेशान होना है—इसे ही भिक्षुओ! परेशान होना कहते है।

भिक्षुओ! इच्छा की पूर्ति न होना दु ख कैसे है? भिक्षुओ, पैदा होने वालो की इच्छा होती है कि हम पैदा न होते, हम पैदा न हो, बूढो की इच्छा होती है कि हम बूढे न होते, हम बूढे न हो, रोगियो की इच्छा होती है कि हम रोगी न होते, हम रोगी न हो, मरने वालो की इच्छा होती है कि हम न मरते, हम न मरे, शोकाकुलो की इच्छा होती है कि हम शोकग्रस्त न होते, हम शोकग्रस्त न हो, रोने-पीटने वालो की इच्छा होती है कि हमे रोना-पीटना न होता, हमे रोना-पीटना न हो, पीडितो की इच्छा होती है कि हमे शारीरिक-क्लेश न होता, हमे शारीरिक क्लेश न हो, चिन्ताग्रस्तो की इच्छा होती है कि हम चिन्तित न होते, हम चिन्तित न हो, परेशान होने वालो की इच्छा होती है कि हम परेशान न होते, हम परेशान न हो, लेकिन यह इच्छा से (तो) नही होता। इस प्रकार इच्छा की पूर्ति न होना दु ख है।

और भिक्षुओ! थोडे मे कौन से पाँच उपादान स्कन्ध दु ख है? यह **रूप-उपादान-स्कन्ध, वेदना-उपादान-स्कन्ध, सज्ञा-उपादान-स्कन्ध, सस्कार-उपादान-स्कन्ध, विज्ञान-उपादान-स्कन्ध।**

भिक्षुओ! जितना भी रूप है—चाहे भूत काल का हो, चाहे वर्तमान का, चाहे भविष्यत का, चाहे अपने अन्दर का हो, अथवा बाहर का, चाहे स्थूल हो, अथवा सूक्ष्म, चाहे बुरा हो, अथवा भला, चाहे दूर हो अथवा समीप—वह सब रूप "रूप-उपादान-स्कन्ध" के अन्तर्गत है, उसी प्रकार जितनी भी वेदनाये है, वह सब 'वेदना-उपादान-स्कन्ध' के अन्तर्गत है, जितनी भी सज्ञा है, वह सब 'सज्ञा-उपादान-स्कन्ध' के अन्तर्गत है, जितने भी सस्कार है वे सब 'सस्कार-उपादान-स्कन्ध' के अन्तर्गत है, और जितना विज्ञान है, वह सब 'विज्ञान-उपादान-स्कन्ध' के अन्तर्गत है।

भिक्षुओ! रूप-उपादान-स्कन्ध किसे कहते है? चारो महाभूतो को, तथा चारो महाभूतो के कारण जो रूप उत्पन्न होता है, उसे रूप-उपादान-स्कन्ध कहते है।

भिक्षुओ! चारो महाभूत कौन से है? **पृथ्वी-धातु, जल-धातु, अग्नि-धातु,** तथा **वायु-धातु।**

भिक्षुओ! पृथ्वी-धातु किसे कहते है? पृथ्वी-धातु दो प्रकार की हो सकती है—(१) अन्दरूनी पृथ्वी-धातु तथा बाहरी पृथ्वी-धातु। अन्दरूनी पृथ्वी-धातु किसे कहते है? यह जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर ठोस है, खुरदरा है जैसे—सिर के बाल, बदन के रुऐ, नाखून, दॉत, चमडी, मास, रगे, हड्डी, हड्डी (के भीतर की) मज्जा, कलेजा, यकृत, क्लोमक, तिल्ली, फुप्फुस, ऑत, पतली-ऑत, पेट मे की (थैली), पाखाना और भी जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर ठोस है, खुरदरा है, उसे अन्दरूनी पृथ्वी-धातु कहते है। और यह जो अन्दरूनी पृथ्वी-धातु है तथा यह जो बाहरी पृथ्वी-धातु है—यह सब पृथ्वी-धातु ही है।

भिक्षुओ! जल-धातु किसे कहते है? जल-धातु दो प्रकार की हो सकती है—अन्दरूनी जल-धातु और बाहरी जल-धातु। अन्दरूनी जल-धातु किसे कहते है? यह जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर जलीय है, बहने वाला है, तरल पदार्थ है जैसे—पित्त, कफ, पीप, लोहू, पसीना, मेद (=चर),

आँसू, चर्वी, थूक, सीढ, कोहनी आदि जोडो मे स्थित तरल पदार्थ तथा मूत्र—और भी जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर जलीय है, वहने वाला है, तरल पदार्थ है, उसे अन्दरूनी जल-धातु कहते है। यह जो अन्दरूनी जल-धातु है तथा यह जो वाहरी जल-धातु है—यह सब जल-धातु ही है।

भिक्षुओ! अग्नि-धातु किसे कहते है? अग्नि-धातु दो प्रकार की हो सक्ती है—अन्दरूनी अग्नि-धातु तथा वाहरी अग्नि-धातु। अन्दरूनी अग्नि-धातु किसे कहते है? यह जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर अग्निमय है, गर्मी है, जैसे—जिससे तपता है, जिससे पचता है, जिससे जलता है, जिससे खाया पिया भली प्रकार हजम होता है और भी जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर अग्नि-रूप है, गर्मी है, उसे अग्नि-धातु कहते है। यह जो अन्दरूनी अग्नि-धातु है तथा यह जो वाहरी अग्नि-धातु है—यह सब अग्नि-धातु ही है।

भिक्षुओ! वायु-धातु किसे कहते है? वायु-धातु दो प्रकार की हो सकती है—अन्दरूनी वायु-धातु तथा वाहरी वायु-धातु। अन्दरूनी वायु-धातु किसे कहते है? यह जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर वायु-रूप है, वायु है जैसे—ऊपर जाने वाली वायु, नीचे जाने वाली वायु, पेट मे रहने वाली वायु, कोष्ठ (=कोठे) मे रहने वाली वायु, अङ्ग अङ्ग मे घूमने वाली वायु, आश्वास-प्रश्वास—और भी जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर वायु-रूप है, वायु है, उसे वायु-धातु कहते है। यह जो अन्दरूनी वायु-धातु है तथा यह जो वाहरी वायु-धातु है—यह सब वायु-धातु ही है।

भिक्षुओ! जिस प्रकार काठ, वल्ली, तृण तथा मिट्टी मिलकर 'आकाश' (=खला) को घेर लेते है और उसे घर कहते है, इसी प्रकार हड्डी, रगे, माँस, तथा चर्म मिलकर आकाश को घेर लेते है और उसे 'रूप' कहते है।

भिक्षुओ! अपनी आँख ठीक हो, लेकिन वाहर की वस्तुऐ सामने न हो और न हो **उनका सयोग,** तो उससे उत्पन्न हो सकने वाले विज्ञान का प्रादुर्भाव नही होता। भिक्षुओ! अपनी आँख ठीक हो, वाहर की वस्तुऐ

सामने हो, लेकिन उनका सयोग न हो, तो भी उससे उत्पन्न हो सकने वाले विज्ञान का प्रादुर्भाव नही होता।

भिक्षुओ! जब अपनी आँख ठीक हो, बाहर की वस्तुऐ (=रूप) सामने हो, और हो उनका सयोग, तभी उससे उत्पन्न हो सकने वाले विज्ञान का प्रादुर्भाव होता है।

इस लिए विज्ञान हेतु(=प्रत्यय) से पैदा होता है, **विना हेतु के विज्ञान** की उत्पत्ति नही।

आँख और रूप से जिस विज्ञान की उत्पत्ति होती है, वह चक्षु-विज्ञान कहलाता है। कान और शब्द से जिस विज्ञान की उत्पत्ति होती है, वह श्रोत-विज्ञान कहलाता है। नाक और गन्ध से जिस विज्ञान की उत्पत्ति होती है वह घ्राण-विज्ञान कहलाता है। काय (=स्पर्शेन्द्रिय) और स्पृशतव्य से जिस विज्ञान की उत्पत्ति होती है, वह काय-विज्ञान कहलाता है। मन तथा धर्म (=मन-इन्द्रिय के विषय) से जिस विज्ञान की उत्पत्ति होती है, वह मनोविज्ञान कहलाता है।

उस विज्ञान मे का जो रूप है, वह रूप-उपादान-स्कन्ध के अन्तर्गत है, म २८
उस विज्ञान मे की जो वेदना है, वह वेदना-उपादान-स्कन्ध के अन्तर्गत है, उस विज्ञान मे की जो सज्ञा है, वह सज्ञा-उपादान-स्कन्ध के अन्तर्गत है, उस विज्ञान मे के जो सस्कार है, वह सस्कार-उपादान स्कन्ध के अन्तर्गत है, जो उस **विज्ञान** (=चित्त) मे का विज्ञान (-मात्र) है, वह विज्ञान-उपादान स्कन्ध के अन्तर्गत है।

भिक्षुओ! यदि कोई कहे कि विना रूप के, विना वेदना के, विना सज्ञा के, विना सस्कार के, विज्ञान=चित्त=मन की उत्पत्ति, स्थिति, विनाश, उत्पन्न होना, वृद्धि तथा विपुलता को प्राप्त होना हो सकता है, तो यह असम्भव है।

भिक्षुओ! सभी **सस्कार** अनित्य है, सभी सस्कार दु ख है, सभी धर्म स २१ २
अनात्म है। (क्योकि) रूप अनित्य है, वेदना अनित्य है, सज्ञा अनित्य है,

सस्कार अनित्य है तथा विज्ञान अनित्य है। जो अनित्य है, सो दु ग्व है। जो दु ख है, सो अनात्म है। जो अनात्म है, वह न मेरा है, न वह मै हूँ, न वह मेरा आत्मा है।

५ इस लिए भिक्षुओ! इसे अच्छी प्रकार ममझ कर यथार्थ रूप मे यू जानना चाहिए कि यह जितना भी रूप है, जितनी भी वेदना है, जितनी भी मज्ञा है, जितने भी सस्कार है, जितना भी विज्ञान है,—चाहे भूतकाल ना हो, चाहे वर्तमान का, चाहे भविष्यत का, चाहे अपने अन्दर का हो, अथवा वाहर का, चाहे स्थूल हो अथवा सूक्ष्म, चाहे वुरा हो अथवा भला, चाहे दूर हो अथवा समीप—वह "न मेरा है, न वह मै हूँ, न वह मेरा आत्मा है।"

६ भिक्षुओ! जैसे इस गङ्गा नदी मे वहुत सी झाग (=फेन) चली आ रही हो। उस झाग को कोई आख वाला आदमी देखे, उस पर सोचे और विचार करे और सोचने तथा विचार करने से उसे वह झाग विल्कुल रिक्त, तुच्छ तथा सारहीन मालूम दे—भिक्षुओ! फेन मे क्या सार हो सकता है? उसी प्रकार भिक्षुओ, जितना भी रूप है—चाहे भून काल का हो, चाहे वर्तमान का, चाहे भविष्यत का, चाहे अपने अन्दर का हो, चाहे वाहर का, चाहे स्थल हो अथवा सूक्ष्म, चाहे वुरा हो अथवा भला, चाहे दूर हो अथवा समीप—उसे भिक्षु देखता है, सोचता है, उस पर अच्छी तरह विचार करता है। उसे देखने, सोचने, उस पर अच्छी तरह विचार करने से उसे वह रूप विल्कुल रिक्त, तुच्छ तथा सारहीन दिखाई देगा। भिक्षुओ, रूप मे क्या सार हो सकता है?

११ इस प्रकार यह आग लग रही है, और तुम्हे आनन्द तथा हँसना सूझता है।

क्या तुम कभी किसी ऐसे स्त्री या पुरुष को नही देखते, जो अस्सी, नव्वे, या सौ वर्ष का हो, जो वूढा हो गया हो, जिसकी कमर शहतीर की तरह झुक गई हो, जो लाठी लिए चलता हो, जो कापता हो, जो दु खी हो, जिसकी जवानी चली गई हो, जिसके दाँत गिर गए हो, जिसके वाल पक गए हो,

जिसका सिर गजा हो गया हो, जिसके मुँह पर झुरियाँ तथा शरीर पर धब्बे पड गए हो ? यदि देखते हो, तो क्या तुम्हारे मन मे यह कभी नही होता कि मुझे भी बुढापा आ सकता है ? मै भी अभी बूढेपन का शिकार हो सकता हूँ ?

क्या तुम कभी किसी ऐसे स्त्री या पुरुष को नही देखते, जो पीडित हो, दुखी हो, अत्यन्त रोगी हो, अपने पेशाव-पाखाने मे गिरा हो, जिसे दूसरे उठाकर विठाते हो, दूसरे लिटाते हो ? यदि देखते हो, तो क्या तुम्हारे मन मे यह कभी नही होता कि मै भी वीमार पड सकता हूँ ? मै भी अभी वीमारी का शिकार हो सकता हूँ।

क्या तुम कभी किसी ऐसे स्त्री या पुरुष को नही देखते, जिसे मरे एक दिन हुआ हो, दो दिन हुए हो, अथवा तीन दिन हो गए हो, जिसका वदन सूज गया हो, नीला पड गया हो, जिसके वदन मे पीप पड गई हो ? यदि देखते हो, तो क्या तुम्हारे मन मे यह कभी नही होता कि मै भी मरने वाला हूँ ? मै भी मृत्यु का शिकार हो सकता हूँ ?

भिक्षुओ ! ससार अनादि है। अविद्या और तृष्णा मे सचालित, भटकते फिरते प्राणियो के आरम्भ (=पूर्वकोटि) का पता नही चलता। स. १४

तो भिक्षुओ, क्या समझते हो, यह जो चारो महासमुद्रो मे पानी है, यह अधिक है अथवा यह जो इस ससार मे वार वार जन्म लेने वालो ने प्रिय के वियोग और अप्रिय के सयोग के कारण रो-पीट कर आँसू वहाये है ?

भिक्षुओ, चिर-काल तक माता के मरने का दुख सहा है, पिता के मरने का दुख सहा है, पुत्र के मरने का दुख सहा है, लडकी के मरने का दुख सहा है, रिश्तेदारो के मरने का दुख सहा है, सम्पत्ति के विनाश का दुख सहा है, रोगी होने का दुख सहा है, उन माता के मरने का दुख सहने वालो ने, पिता के मरने का दुख सहने वालो ने, पुत्र के मरने का दुख सहने वालो ने, लडकी के मरने का दुख सहने वालो ने, रिश्तेदारो के मरने का दुख

सहने वालो ने, सम्पत्ति के विनाश का दु ख सहने वालो ने, रोगी होने का दु ख सहने वालो ने ससार मे वार वार जन्म लेकर प्रिय के वियोग और अप्रिय के सयोग के कारण जो रो-पीटकर आँसू वहाए है, वे ही अधिक है, इन चारो महासमुद्रो का जल नही।

स १४-२ तो भिक्षुओ, क्या समझते हो, यह जो चारो महासमुद्रो मे पानी है, यह अधिक है अथवा यह जो ससार मे वार वार जन्म लेकर सीस कटाने पर रक्त वहा है ?

भिक्षुओ ! 'ग्राम घातक चोर है' करके सिर काटने पर, 'डाका डालने वाले चोर है' करके सिर काटने पर, 'पराई स्त्री के पास जाने वाले चोर है' करके सिर काटने पर चिर काल तक जो रक्त वहा है, वही अधिक है, इन चारो महासमुद्रो का जल नही।

यह किस लिए ? भिक्षुओ, ससार अनादि है। अविद्या और तृष्णा से सचालित, भटकते फिरते आदमियो के आरम्भ (पूर्व कोटि) का पता नही चलता।

इस प्रकार भिक्षुओ, दीर्घ काल तक दु ख का अनुभव किया है, तीव्र दु ख का अनुभव किया है, वडी वडी हानियाँ सही है, श्मशान भूमि को पाट दिया है। अव तो भिक्षुओ, सभी सस्कारो से निर्वेद प्राप्त करो, वैराग्य प्राप्त करो, मुक्ती प्राप्त करो।

(२)

दुःख समुदय आर्य-सत्य

भिक्षुओ, दु ख के समुदय के बारे मे आर्य-सत्य क्या है ?

भिक्षुओ, यह जो फिर फिर जन्म का कारण है, यह जो लोभ तथा राग से युक्त ह, यह जो जहाँ कहीं मजा लेती है, यह जो तृष्णा है, जैसे **काम-तृष्णा, भव-तृष्णा** तथा **विभव-तृष्णा**—यह तृष्णा ही दु ख के समुदय के बारे मे आर्य-सत्य है।

तो भिक्षुओ, यह तृष्णा कैसे पैदा होती हुई पैदा होती है और कैसे अपना घर बनाती हुई घर बनाती है ?

दी २२

ससार मे जो प्रिय-कर है, ससार मे जिसमे मजा है, वही यह तृष्णा पैदा होती है, और वही यह अपना घर बनाती है।

ससार मे प्रिय-कर क्या है, ससार मे मजा किस म है ? ससार मे चक्षु प्रिय-कर है, ससार मे चक्षु मे मजा है। ससार मे रूप प्रिय-कर है, ससार मे रूप मे मजा है। ससार मे श्रोत्र प्रिय-कर है, ससार मे श्रोत्र मे मजा है। ससार मे शब्द प्रिय-कर है, ससार मे शब्द मे मजा है। ससार मे घ्राण प्रिय-कर है, ससार मे घ्राण मे मजा है। ससार मे गध प्रिय-कर है, ससार मे गन्ध मे मजा है। ससार मे जिह्वा प्रिय-कर है, ससार मे जिह्वा मे मजा है। ससार मे रस प्रिय-कर है, ससार मे रस मे मजा है। ससार मे काय प्रिय-कर है ससार मे काय मे मजा है। ससार मे स्पर्श प्रिय-कर है, ससार मे स्पर्श मे मजा है। ससार मे मन प्रिय-कर है, ससार मे मन मे मजा है। ससार मे मन के विषय (=धर्म) प्रिय-कर है, ससार मे मन के विषयो मे मजा है—इन्ही मे यह तृष्णा पैदा होती है और इन्ही मे अपना घर बनाती है।

ससार मे चक्षु-विज्ञान प्रिय-कर है, ससार मे चक्षु-विज्ञान मे मजा है। ससार मे श्रोत्र-विज्ञान प्रिय-कर है, ससार मे श्रोत्र-विज्ञान मे मजा है। ससार मे घ्राण-विज्ञान प्रिय-कर है, ससार मे घ्राण-विज्ञान मे मजा है। ससार मे जिह्वा-विज्ञान प्रिय-कर है, ससार मे जिह्वा-विज्ञान मे मजा है। ससार मे काय-विज्ञान प्रिय-कर है, ससार मे काय-विज्ञान मे मजा है। ससार मे मनो-विज्ञान प्रिय-कर है, ससार मे मनो-विज्ञान मे मजा है—इन्ही मे यह तृष्णा पैदा होती है, और इन्ही मे अपना घर बनाती है।

ससार मे चक्षु स्पर्श प्रिय-कर है, ससार मे चक्षु-स्पर्श मे मजा है। ससार मे श्रोत्र-स्पर्श प्रिय-कर है, ससार मे श्रोत्र-स्पर्श मे मजा है। ससार मे घ्राण-स्पर्श प्रिय-कर है, ससार मे घ्राण-स्पर्श मे मजा है। ससार मे जिह्वा-स्पर्श प्रिय-कर है, ससार मे जिह्वा-स्पर्श मे मजा है। ससार मे काय-स्पर्श प्रिय-कर है ससार मे काय-स्पर्श मे मजा है। ससार मे मन-स्पर्श प्रिय-कर है, ससार मे मन-स्पर्श मे मजा है—इन्ही मे यह तृष्णा पैदा होती है, और इन्ही मे यह अपना घर बनाती है।

ससार मे चक्षु-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना (=अनुभूति) प्रिय-कर है, ससार मे चक्षु-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना (=अनुभूनि) मे मजा है। ससार मे श्रोत्र-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना प्रिय-कर है, ससार मे श्रोत्र-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना मे मजा है। ससार मे घ्राण-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना प्रिय-कर है, ससार मे घ्राण-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना मे मजा है। ससार मे जिह्वा-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना प्रिय-कर है, ससार मे जिह्वा-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना मे मजा है। ससार मे काय-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना प्रिय-कर है, ससार मे काय-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना मे मजा है। ससार मे मन-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना प्रिय-कर है, ससार मे मन-स्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना मे मजा है—इन्ही मे यह तृष्णा पैदा होती है, और इन्ही मे यह अपना घर बनाती है।

रूप-सञ्ञा, (=सज्ञा) शब्द-सञ्ञा, गन्ध-सञ्ञा, रस-सञ्ञा, स्पर्श-सञ्ञा तथा धर्म (=मन के विषय)-सञ्ञा—यह सव प्रिय-कर है, इन सब मे मजा है, इन्ही मे यह तृष्णा पैदा होती है, और इन्ही मे यह अपना घर वनाती है।

रूप-सचेतना, शब्द-सचेतना, गन्ध-सचेतना, रस-सचेतना, स्पर्श-सचेतना तथा धर्म (=मन के विषय)-सचेतना—यह सव प्रिय-कर है, इन सब मे मजा है, इन्ही मे यह तृष्णा पैदा होती है, और इन्ही मे यह अपना घर वनाती है।

रूप-वितर्क, शब्द-वितर्क, गन्ध-वितर्क, रस-वितर्क, स्पर्श-वितर्क तथा धर्म (=मन के विषय)-वितर्क—यह सब प्रिय-कर है, इन सब मे मजा है, इन्ही मे यह तृष्णा पैदा होती है, और इन्ही मे यह अपना घर वनाती है।

रूप-विचार, शब्द-विचार, गन्ध-विचार, रस-विचार, स्पर्श-विचार, तथा धर्म (=मन के विषय)-विचार—यह सब प्रिय-कर है, इन सब मे मजा है, इन्ही मे यह तृष्णा पैदा होती है, और इन्ही मे यह अपना घर वनाती है।

मनुष्य अपनी आँख से रूप देखता है। प्रिय-कर लगे तो उसमे आसक्त हो जाता है, अप्रिय-कर हो, तो उससे दूर भागता है। कान से शब्द सुनता है, प्रिय-कर लगे तो उसमे आसक्त हो जाता है, अप्रिय-कर लगे तो उससे दूर भागता है। घ्राण से गन्ध सूँघता है, प्रियकर लगे तो उसमे आसक्त हो जाता है, अप्रिय-कर लगे तो उससे दूर भागता है। जिह्वा से रस चखता है, प्रिय-कर लगे तो उसमे आसक्त हो जाता है, अप्रिय-कर लगे तो उससे दूर भागता है। काय-से स्पर्श करता है, प्रिय-कर लगे तो उसमे आसक्त हो जाता है, अप्रिय-कर लगे तो उससे दूर भागता है। मन से मन के विषय (=धर्म) का चिन्तन करता है, प्रिय-कर लगे तो उसमे आसक्त हो जाता है, अप्रिय-कर लगे तो उससे दूर भागता है। म ३८

इस प्रकार आसक्त होने वाला तथा दूर भागने वाला, जिस दुःख, सुख वा अदुःख असुख, किसी भी प्रकार की वेदना=अनुभूति का अनुभव करता

है, वह उस वेदना मे आनन्द लेता है, प्रशसा करता है, उसे अपनाता है। वेदना को जो अपना बनाना है, वही उसमे राग उत्पन्न होना है। वेदना मे जो राग है, वही उपादान है। जहाँ उपादान है, वहाँ भव है। जहाँ भव है, वहाँ पैदा होना है। जहाँ पैदा होना है, वहाँ बूढा-होना, मरना, शोक करना, रोना-पीटना, पीडित-होना, चिन्तित होना, परेशान होना—सब है। इस प्रकार इस सारे के सारे दुख का समुदय होता है।

१३ भिक्षुओ, कामना ही के कारण, कामना ही की वजह से, कामना ही के हेतु से राजा राजाओ से झगडते है, क्षत्रिय क्षत्रियो से झगडते है, ब्राह्मण ब्राह्मणो से झगडते है, वैश्य (=गृहपति) वैश्यो से झगडते है, माता पुत्र से, पुत्र माता से झगडता है, पिता पुत्र से, पुत्र पिता से झगडता है, भाई भाई से, भाई बहन से, बहन भाई से झगडा करती है, मित्र मित्र से झगडता है—इस प्रकार वे झगडते हुए एक दूसरे से मुक्का-मुक्की होते है, डडो से भी पीटते है, शस्त्रो से भी प्रहार करते है। वे मर जाते है वा मरणात दुख पाते है।

और फिर भिक्षुओ, कामना ही के कारण, कामना ही की वजह से, कामना ही के हेतु से, (चोर) घर मे सेध लगाते है, लूटते है, उजाड डालते है, रास्ता रोकते है तथा पर-स्त्री-गमन करते है। ऐसे आदमियो को राजा पकडवाकर तरह तरह के दण्ड दिलवाते है—चाबुक लगवाते है, बेत से तथा डडे से पिटवाते है, हाथ कटवा देते है, पैर कटवा देते है, हाथ-पैर दोनो कटवा देते है, कुत्तो से नुचवा डालते है, जीते जी सूली पर चढा देते है तथा तलवार से सिर कटवा डालते है। वे मर जाते है वा मरणात दुख पाते है।

और फिर भिक्षुओ, कामना ही के कारण, कामना ही की वजह से, कामना ही के हेतु से (आदमी) शरीर से दुष्कर्म करते है, वाणी से दुष्कर्म करते है, तथा मन से दुष्कर्म करते है। शरीर, वाणी तथा मन से दुष्कर्म करके शरीर छूटने पर मरने के अनन्तर दुर्गति को प्राप्त होते है।

न आकाश मे, न समुद्र की सतह मे, न् पर्वतो के विवर मे—ससार मे कही भी कोई ऐसी जगह नही है, जहाँ भाग कर मनुष्य पाप से बच सके। ध. १

भिक्षुओ, ऐसा समय आता है जब यह महासमुद्र सूख जाता है, नही रहता है, लेकिन अविद्या और तृष्णा से सचालित, भटकते फिरते प्राणियो के दुख का अन्त नही होता। स २१-१०

भिक्षुओ, ऐसा समय आता है, जब यह महापृथ्वी जल जाती है, विनाश को प्राप्त होती है, नही रहती है, लेकिन अविद्या और तृष्णा से सचालित, भटकते फिरते प्राणियो के दुख का अन्त नही।

---

(३)

दुःख निरोध आर्य-सत्य

दी २२ भिक्षुओ, दु ख के निरोध के बारे मे आर्य-सत्य क्या है ?

उसी तृष्णा से सम्पूर्ण वैराग्य, उस तृष्णा का निरोध, त्याग, परित्याग, उस तृष्णा से मुक्ति अनासक्ति—यही दु ख के निरोध के बारे मे आर्य-सत्य है।

किस विषय मे यह तृष्णा प्रहीण करने से प्रहीण होती है, निरुद्ध करने से निरुद्ध होती है ? ससार मे जो प्रिय-कर है, ससार मे जिसमे मजा है, उसीमे यह तृष्णा प्रहीण करने से प्रहीण होती है, उसीमे निरोध करने से निरुद्ध होती है।

स १२७ भिक्षुओ, ससार मे जो कुछ भी प्रिय-कर लगता है, ससार मे जिसमे मजा लगता है, उसे चाहे पिछले समय के, चाहे अब के, चाहे भविष्य के, जो भी श्रमण-ब्राह्मण दु ख करके समझेगे, रोग करके समझेगे, उससे डरेंगे, वही तृष्णा को छोड सकेगे।

इ ९६ काम-तृष्णा और भव-तृष्णा से मुक्त होने पर, प्राणी फिर जन्म ग्रहण नही करता। क्योंकि तृष्णा के सम्पूर्ण निरोध से उपादान निरुद्ध हो जाता है। उपादान निरुद्ध हुआ, तो भव निरुद्ध। भव निरुद्ध हुआ तो पैदाइश निरुद्ध। पैदा होना निरुद्ध हुआ, तो बूढा होना, मरना, शोक-करना, रोना-पीटना, पीडित होना, चिन्तित-होना, परेशान होना—यह सब निरुद्ध हो जाता है। इस प्रकार इस सारे के सारे दु ख-स्कन्ध का निरोध होता है।

स २१-३ भिक्षुओ, यह जो रूप का निरोध है, उपशमन है, अस्त होना है, यही

दु ख का निरोध है, रोगो का उपशमन है, जरा-मरण का अस्त होना है। यह जो वेदना का निरोध है, सज्ञा का निरोध है, सस्कारो का निरोध है, तथा विज्ञान का निरोध है, उपशमन है, अस्त होना है, यही दु ख का निरोध है, रोगो का उपशमन है, जरामरण का अस्त होना है।

यही शान्ति है, यही श्रेष्ठता है, यह जो सभी सस्कारो का शमन, सभी चित्त-मलो का त्याग, तृष्णा का क्षय, विराग-स्वरूप, निरोधस्वरूप निर्वाण है। अ. ३-३२

भिक्षुओ, जिसका हृदय राग से अनुरक्त है, द्वेष से दूषित है, मोह से मूढ है, वह ऐसी वाते सोचता है, जिससे उसे दु ख हो, वह ऐसी वाते सोचता है जिससे औरो को दु ख हो, वह ऐसी वाते सोचता है जिससे उसे तथा औरो को—दोनो को दु ख हो। उसको मानसिक दु ख तथा चिन्ता रहती है। अ ३-५२

लेकिन, भिक्षुओ, जिसका हृदय राग से मुक्त है, द्वेष से मुक्त है, मोह से मुक्त है, वह ऐसी वाते नही सोचता, जिससे उसे दु ख हो, वह ऐसी वाते नही सोचता जिससे औरो को दु ख हो, वह ऐसी वाते नही सोचता जिससे उसे तथा औरो को —दोनो को दु ख हो। उसको मानसिक दु ख तथा चिन्ता नही होती।

इस प्रकार भिक्षुओ आदमी जीते जी **निर्वाण** को प्राप्त करता है, जो काल से सीमित नही, जिसके वारे मे कहा जा सकता है कि 'आओ और स्वय देख लो', जो ऊपर उठाने वाला है, जिसे प्रत्येक वुद्धिमान् आदमी स्वय प्रत्यक्ष कर सकता है।

भिक्षु जव शान्त-चित्त हो जाता है, जव (वन्धनो से) विल्कुल मुक्त हो जाता है, तव उसको कुछ और करना वाकी नही रहता। जो कार्य्य वह करता है, उसमे कोई ऐसा नही होता, जिसके लिए उसे पश्चात्ताप हो।

जिस प्रकार एक घन-पर्वत को हवा तनिक नही हिला पाती उसी प्रकार जितने भी रूप, रस, शब्द, गन्ध, स्पर्श तथा अनुकूल वा प्रतिकूल विषय है,

वे स्थित-प्रज्ञ भिक्षु को तनिक नही हिला पाते। उसका चित्त स्थिर होता है, मुक्त होता है, उसके वश मे होता है।

३ भिक्षुओ, ऐसा आयतन है, जहाँ न पृथ्वी है, न जल है, न अग्नि है, न वायु है, न आकाश-आयतन है, न विज्ञान-आयतन है, न अकिञ्चन-आयतन है, न नेवसञ्जानासञ्ञा-आयतन है, न यह लोक है, न परलोक है, न चाँद है, न सूर्य्य है, वहाँ भिक्षुओ न जाना होता है, न आना होता हे, न ठहरना होता है, न च्युत होना होता है, न उत्पन्न होना होता है, वह आधार-रहित है, ससरण-रहित है, आलम्बन-रहित है। यही दुख का अन्त है।

उ. ८ भिक्षुओ! जात (=उत्पन्न) का अभाव है, भूत का अभाव है, कृत का अभाव है, सस्कृत का अभाव है। यदि भिक्षुओ, जात का अभाव न होता, भूत का अभाव न होता, कृत का अभाव न होता, सस्कृत का अभाव न होता, तो भिक्षुओ, जात से, भूत से, कृत से, सस्कृत से, मुक्ति न दिखाई देती। लेकिन क्योकि भिक्षुओ, जात का अभाव है, भूत का अभाव है, कृत का अभाव है, सस्कृत का अभाव है, इसी लिए जात से, भूत से, कृत से, सस्कृत मे मुक्ति दिखाई देती है।

दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग आर्य-सत्य

दु ख निरोध की ओर ले जानेवाला मार्ग आर्य-सत्य कौन सा है ? स.

यह जो कामोपभोग का हीन, ग्राम्य, अशिष्ट, अनार्य, अनर्थ-कर जीवन है और यह जो अपने शरीर को व्यर्थ क्लेश देने का दु ख मय, अनार्य, अनर्थकर जीवन है, इन दोनो सिरे की बातो से बचकर तथागत ने मध्यम-मार्ग का ज्ञान प्राप्त किया है जो कि आँख खोल देने वाला है, ज्ञान करा देने वाला है, शमन के लिए, अभिज्ञा के लिए, बोध के लिए, निर्वाण के लिए होता है।

यही आर्य अष्टागिक मार्ग दु ख-निरोध की ओर ले जाने वाला है, जो कि यूँ है—

१ सम्यक् दृष्टि २ सम्यक् सकल्प	प्रज्ञा
३ सम्यक् वाणी ४ सम्यक् कर्मान्त ५ सम्यक् आजीविका	शील
६ सम्यक् व्यायाम ७ सम्यक् स्मृति ८ सम्यक् समाधि	समाधि

निर्मल ज्ञान की प्राप्ति के लिए यही एक मार्ग है। और कोई मार्ग नही। ध. २०

इस मार्ग पर चलने से तुम दु ख का नाश करोगे। भिक्षुओ, अपने आप

घ. १६ अपने दीपक वनो, अपनी ही शरण जाओ, किसी दूसरे की शरण नही। काम तो तुम्हे ही सिरे चढाना है, तथागत तो केवल मार्ग वतला देने वाले हैं।

म. २६ भिक्षुओ, ध्यान दो, अमृत मिला है। मैं तुम्हे सिखाता हूँ। मैं तुम्हे धर्मोपदेश देता हूँ। जैसे मैं वताता हूँ, उसके अनुकूल आचरण करके जिस उद्देश की पूर्ति के लिए कुल-पुत्र घर से वेघर हो प्रव्रजित होते हैं, उस अनुत्तर ब्रह्मचर्य को शीघ्र ही इसी जन्म मे जान कर, साक्षात कर, प्राप्त कर, विचरो।

सम्यक् दृष्टि

भिक्षुओ, सम्यक्-दृष्टि कौन सी होती है? भिक्षुओ, जिस समय आर्य-श्रावक दुराचरण को पहचान लेता है, दुराचरण के मूल कारण को पहचान लेता है, सदाचरण को पहचान लेता है सदाचरण के मूल कारण को पहचान लेता है, तब उसकी दृष्टि, इस कारण से भी सम्यक-दृष्टि, सीधी-दृष्टि कहलाती है, उसकी इस धर्म मे अचल श्रद्धा है, वह इस धर्म मे आ गया है। म १

भिक्षुओ, दुराचरण कौनसे है?

१ जीव-हिंसा करना दुराचरण है २ चोरी करना दुराचरण है ३ कामभोग सम्बन्धी मिथ्याचार दुराचरण है	शारीरिक कृत्य
४ झूठ बोलना दुराचरण है ५ चुगली खाना दुराचरण है ६ कठोर बोलना दुराचरण है ७ फजूल बोलना दुराचरण है .	वाणी के कृत्य
८ लोभ करना दुराचरण है ९ क्रोध करना दुराचरण है १० मिथ्या-दृष्टि रखना दुराचरण है	मन के कृत्य

भिक्षुओ, दुराचरण का मूल कारण क्या है? दुराचरण का मूल कारण

लोभ है, दुराचरण का मूल कारण द्वेष है, दुराचरण का मूल कारण मोह है।

म. ९ भिक्षुओ, सदाचरण क्या है ?

१ जीवहिंसा न करना सदाचरण है
२ चोरी न करना सदाचरण है
३ काम भोग सम्बन्धी मिथ्याचरण न करना सदाचरण है
४ झूठ न बोलना सदाचरण है
५ चुगली न करना सदाचरण है
६ कठोर न बोलना सदाचरण है
७ फ्जूल न बोलना सदाचरण है
८ अ-लोभ सदाचरण है
९ अ-द्वेष सदाचरण है
१० सम्यक्-दृष्टि सदाचरण है

भिक्षुओ, सदाचरण का मूल कारण क्या है ?

सदाचरण का मूल कारण लोभ का न होना है, सदाचरण का मूल कारण द्वेष का न होना है, सदाचरण का मूल कारण मोह का न होना है।

और भिक्षुओ, जो आर्य-श्रावक दुख को समझता है, दुख के समुदय को समझता है, दुख के निरोध को समझता है, दुख के निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझता है, वह इस समझ के कारण सम्यक्-दृष्टि वाला होता है।

स २१-५ भिक्षुओ, यदि कोई कहे कि मै तब तक भगवान् (बुद्ध) के उपदेश के अनुसार नही चलूँगा, जब तक कि भगवान् मुझे यह न बता देंगे कि ससार शाश्वत है, वा अशास्वत, ससार सान्त है वा अनन्त, जीव वही है जो शरीर है वा जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है, मृत्यु के बाद तथागत रहते है, वा मृत्यु के बाद तथागत नही रहते—तो भिक्षुओ, यह बाते तो तथागत के द्वारा बे-कही ही रहेगी और वह मनुष्य यूँ ही मर जायगा।

भिक्षुओ, जैसे किसी आदमी को जहर मे बुझा हुआ तीर लगा हो। उस के मित्र,रिश्तेदार उसे तीर निकालने वाले वैद्य के पास ले जावे। लेकिन वह कहे —"मैं तव तक यह तीर नही निकलवाऊँगा, जव तक यह न जान लूँ कि जिस आदमी ने मुझे यह तीर मारा है वह क्षत्रिय है, ब्राह्मण है, वैश्य है, वा शूद्र है," अथवा वह कहे —"मैं तव तक यह तीर नही निकलवाऊंगा, जव तक यह न जान लूँ कि जिस आदमी ने मुझे यह तीर मारा है, उसका अमुक नाम है, अमुक गोत्र है," अथवा वह कहे —"मैं तव तक यह तीर नही निकलवाऊँगा, जव तक यह न जान लूँ कि जिस आदमी ने मुझे यह तीर मारा है वह लम्वा है, छोटा है वा मँझले कद का है," तो हे भिक्षुओ, उस आदमी को इन वातो का पता लगेगा ही नही, और वह यूँ ही मर जायगा। म ६३

भिक्षुओ, 'ससार शास्वत है' ऐसा मत रहने पर भी 'ससार अशास्वत है' ऐसा मत रहने पर भी, 'ससार सान्त है' ऐसा मत रहने पर भी, 'ससार अनन्त है' ऐसा मत रहने पर भी, 'जीव वही है जो शरीर है', ऐसा मत रहने पर भी, 'जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है' ऐसा मत रहने पर भी, 'मृत्यु के वाद तथागत रहते हैं' ऐसा मत रहने पर भी, 'मृत्यु के वाद तथागत नही रहते' ऐसा मत रहने पर भी—जन्म, वुढापा, मृत्यु, शोक, रोना-पीटना, पीडित-होना, चिन्तित-होना, परेशान-होना तो (हर हालत मे) है ही, और मै इसी जन्म मे—जीते जी—इन्ही सव के नाश का उपदेश देता हूँ।

भिक्षुओ, जिस अज्ञ **पृथग्जन** ने आर्यो की सगति नही की, आर्य-धर्म का ज्ञान प्राप्त नही किया, आर्य-धर्म का अभ्यास नही किया, सत्पुरुषो की सगति नही की, सद्धर्म का ज्ञान प्राप्त नही किया, सद्धर्मका अभ्यास नही किया, उसका मन, **सत्काय-दृष्टि** से युक्त होता है, वह यह नही जानता कि 'सत्काय दृष्टि' पैदा होने पर, उससे किस प्रकार मुक्त हुआ जाता है। उसकी 'सत्काय-दृष्टि' दृढ होकर उसको पतन की ओर ले जाने वाला वन्धन वन जाती है। उसका मन विचिकित्सा से युक्त होता है उसका म. ६४

मन **'शील-व्रत-परामर्श'** से युक्त होता है उसका मन काम-वासना से युक्त होता है उसका मन क्रोध से युक्त होता है उसका क्रोध दृढ हो कर उसे पतन की ओर ले जाने वाला वन्धन वन जाता है।

वह यह नही जानता कि उसे किन वातो को मन मे स्थान नही देना चाहिये, और किन वातो को मन मे स्थान देना चाहिये। इस लिए वह जिन वातो को मन मे स्थान नही देना चाहिये, उन वातो को मन मे स्थान देता है और जिन वातो को मन मे स्थान देना चाहिये उनको मन मे स्थान नही देता।

म. १ वह नामुनासिव ढँग से विचार करता है —'मै भूत-काल मे था कि नही था? मै भूत-काल मे क्या था? मै भूत-काल मे कैसे था? मै भूत-काल मे क्या होकर फिर क्या क्या हुआ? मै भविष्यत् काल मे होऊँगा कि नही होऊँगा? मै भविष्यत्-काल मे क्या होऊँगा? मै भविष्यत्-काल मे कैसे होऊँगा? मै भविष्यत्-काल मे क्या होकर क्या होऊँगा?" अथवा वह वर्तमान-काल के सम्वन्ध मे सन्देह-शील होता है—"मै हूँ कि नही हूँ? मै क्या हूँ? मै कैसे हूँ? यह सत्व कहाँ से आया? यह कहाँ जाएगा?"

उसके इस प्रकार नामुनासिव ढग से विचार करने से उसके मन मे इन छ दृष्टियो (=मतो) मे से एक दृष्टि घर कर लेती है। या तो वह इस वात को सच समझता है (१) "मेरा आत्मा है," या वह इस वात को सच समझता है (२) "मेरा आत्मा नही है", या तो वह इस वात को सच समझता है कि (३) "मै आत्मा' से आत्मा को पहचानता हूँ," या वह इस वात को सच समझता है कि (४) "मै अनात्मा से आत्मा को पहचानता हूँ," अथवा उसकी ऐसी दृष्टि होती है (५) जो "आत्मा" कहलाता है यह ही अच्छे वुरे कर्मो के फल का भोगने वाला है तथा (६) **यह आत्मा नित्य है, ध्रुव है, शाश्वत है, अपरिवर्तन-शील है, जैसा है वैसा ही (सदैव) रहेगा**—भिक्षुओ, यह सव केवल मूर्खता ही मूर्खता है।

भिक्षुओ, इसे कहते है मतो मे जा पडना, मतो की गहनता, मतो का

कान्तार, मतो का दिखावा, मतो का फन्दा, तथा मतो का वन्धन। इन मतो के वन्धन मे बँधा हुआ आदमी, जिसने (सद्धर्म को) नही सुना वह जन्म, वुढापे, तथा मृत्यु से मुक्त नही होता और मुक्त नही होता, शोक मे, रोने-पीटने से, पीडित होने से, चिन्तित होने से, परेशान होने से। मै कहता हूँ कि वह दुख से मुक्त नही होता।

भिक्षुओ, जिस पडित आदमी ने आर्यों की सगति की है, आर्य-धर्म का ज्ञान प्राप्त किया है, आर्य-धर्म का अच्छी तरह अभ्यास किया हे, सत्पुरुषो की सगति की हे, सद्धर्म का ज्ञान प्राप्त किया है, सद्धर्म का अभ्यास किया है— वह यह जानता है कि उसे किन वातो को मन मे स्थान देना चाहिये, और किन वातो को मन मे स्थान नही देना चाहिये। यह जानते हुए वह जिन वातो को मन मे स्थान नही देना चाहिये, उन्हे मन मे स्थान नही देना है, जिन्हे मन मे स्थान देना चाहिये, उन्हे मन मे स्थान देता है। वह "यह दुख है" इसे भली प्रकार हृदयङ्गम करता हे, "यह दुख का समुदय है" इसे भली प्रकार हृदयङ्गम करता है, "यह दुख का निरोध है," इसे भली प्रकार हृदयङ्गम करता हे, और "यह दुख के निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है"—इसे भली प्रकार हृदयङ्गम करता है। म. २

इन्हे इस तरह हृदयङ्गम करने वाले के **तीनो वन्धन** कट जाते है— (१) सत्काय-दृष्टि, (२) विचिकित्सा, (३) शील-व्रत परामर्श। जिनके भिक्षुओ, यह तीनो वन्धन कट गये है, वे सभी स्रोतापन्न है, उनका पतन असम्भव है, उनकी सम्बोधि-प्राप्ति निश्चित है। म. २२

पृथ्वी के एक छत्र राज्य से, स्वर्ग-लोक को जाने से, समस्त विश्व के आधिपत्य से भी वढकर है स्रोतापत्ति-फल। ध. १०८

भिक्षुओ, यदि कोई पूछे कि भगवान् गौतम किस दृष्टि के है? तो उसे भिक्षुओ, क्या उत्तर दोगे? भिक्षुओ 'तथागत किसी दृष्टि के है' ऐसी बात नही रही है। भिक्षुओ तथागत ने यह सब देख लिया है कि यह रूप है, यह रूप का समुदय है, यह रूप का अस्त होना है, यह वेदना है, यह वेदना का म ७२

समुदय है, यह वेदना का अस्त होना है, यह सञ्ञा है, यह सञ्ञा का समुदय है, यह सञ्ञा का अस्त होना है, यह सखार है, यह सखारो का समुदय है, यह सखारो का अस्त होना है तथा यह विज्ञान है, यह विज्ञान का समुदय है, यह विज्ञान का अस्त होना है। इस लिये कहता हूँ कि सभी मानताओ के, सभी अस्तित्वो के सभी अहङ्कारो के, सभी "मेरे" के, सभी अभिमानो के नाश से, विराग से, त्याग से, छूटने से, उपादान न रहने से, तथागत विमुक्त हो गये है।

अ.३।१३४ भिक्षुओ, चाहे तथागत उत्पन्न हो, चाहे उत्पन्न न हो, यह सदैव यूँ ही रहता है। सभी सस्कार अनित्य है, जैसे रूप अनित्य है, वेदना अनित्य है, सञ्ञा अनित्य है, सस्कार अनित्य है, विज्ञान अनित्य है।

भिक्षुओ, चाहे तथागत उत्पन्न हो, चाहे उत्पन्न न हो, यह सदैव यूँ ही रहता है। सभी सस्कार दुख है, जैसे रूप दुख है, वेदना दुख है, सञ्ञा दुख है, सस्कार दुख है, विज्ञान दुख है।

भिक्षुओ, चाहे तथागत उत्पन्न हो, चाहे तथागत उत्पन्न न हो, यह सदैव यूँ ही रहता है। सभी धर्म अनात्म है, जैसे रूप अनात्म है, वेदना अनात्म है, सञ्ञा अनात्म है, सस्कार अनात्म है, विज्ञान अनात्म है।

स. १६ भिक्षुओ, पण्डित जनो का कहना है कि रूप नित्य नही, ध्रुव नही, शाश्वत नही, अपरिवर्तन-शील नही। मै भी कहता हूँ कि नही है। वेदना-सज्ञा-सस्कार-विज्ञान, नित्य नही, ध्रुव नही, शाश्वत नही, अपरिवर्तन-शील नही। मै भी कहता हूँ कि नही है। भिक्षुओ तथागत के इस प्रकार कहने, उपदेश करने, प्रकाशित करने, स्थापित करने, विस्तार करने, विभाजन करने और उघाड कर दिखा देने पर भी यदि कोई नही समझता है, नही देखता है, तो मै ऐसे मूर्ख, पृथग्जन, अन्धे, जिसे आँख नही, जो समझता

अ. १.१५ नही, जो देखता नही—को क्या करूँ? यह बात भिक्षुओ, विल्कुल असम्भव है, इसके लिए बिल्कुल गुजायश नही है कि कोई आँख वाला आदमी किसी भी धर्म को आत्मा करके ग्रहण करे।

भिक्षुओ, यदि कोई ऐसा कहे कि वेदना मेरा आत्मा है, तो उसे यूँ कहना दी. १५
चाहिये कि आयुष्मान् वेदना तीन तरह की होती है (१) सुख-वेदना, (२) दुःख-वेदना, (३) असुख-अदुख वेदना। इन तीन तरह की वेदनाओ में से किस तरह की वेदना को आप 'आत्मा' समझते है?

क्योकि भिक्षुओ, जिस समय कोई सुख-वेदना की अनुभूति करता है, उस समय उसे न तो दुःख-वेदना की अनुभूति होती है, न असुख-अदुख वेदना की, उस समय उसे केवल सुख-वेदना की ही अनुभूति होती है। जिस समय कोई दुःख-वेदना की अनुभूति करता है, उस समय उसे न तो सुख-वेदना की अनुभूति है, न असुख-अदुःख वेदना की, उस समय उसे केवल दुःख-वेदना की ही अनुभूति होती है। जिस समय कोई असुख-अदुःख वेदना की अनुभूति करता है, उस समय न उसे सुख-वेदना की अनुभूति होती है, न दुःख वेदना की, उस समय उसे केवल असुख-अदुख वेदना की अनुभूति होती है।

भिक्षुओ, यह तीनो वेदनाये अनित्य है, सस्कृत है, प्रत्यय से उत्पन्न है, क्षय होने वाली है, व्यय होने वाली है, विराग को प्राप्त होने वाली है, निरोध को प्राप्त होने वाली है। इन तीनो वेदनाओ मे से किसी एक की भी अनुभूति करते समय यदि किसी को ऐसा होता है कि "यह आत्मा है" तो फिर उस वेदना का निरोध होते समय उसको ऐसा होगा कि "मेरा आत्मा बिखर रहा है"। इस प्रकार वह अपने सामने ही अनित्य, सुख-दुःख मय, उत्पन्न तथा विनाश होने वाले "आत्मा" को देखता है।

भिक्षुओ यदि कोई कहे "मेरी वेदना आत्मा नही, आत्मा की अनुभूति नही होती", तो उससे यह पूछना चाहिये कि आयुष्मान्, जहाँ किसी की अनुभूति ही नही, उसके बारे मे क्या यह हो सकता है कि मैं यह (=आत्मा) हूँ?"

लेकिन भिक्षुओ, यदि कोई ऐसा कहे कि "न तो मेरी वेदना आत्मा है, और न ही मेरे आत्मा की अननुभूति होती है, किन्तु मेरा आत्मा

अनुभव करता है, मेरे आत्मा का स्वभाव=गुण है वेदना।" तो उससे पूछना चाहिये, कि "आयुष्मान्, यदि सभी वेदनाओ का सम्पूर्ण निरो॰ हो जाए, कोई एक भी वेदना न रहे, तो क्या किसी एक भी वेदना के न होने पर ऐसा होगा कि यह (आत्मा) मैं हूँ" ?

म १४८ और भिक्षुओ, यदि कोई कहे कि "मन आत्मा है" तो यह भी ठीक नही है। क्योकि मन की उत्पत्ति और निरोध, दोनो दिखाई देते हैं जिस की उत्पत्ति और निरोध दोनो दिखाई देते है, उसे आत्म मान लेने पर यह मान लेना होता है कि "मेरा आत्मा उत्पन्न होता ह और मरता है, ।" इस लिए "मन आत्मा है"—यह ठीक नही है। मन अनात्म है।

ओर भिक्षुओ, यदि कोई कहे कि धर्म (=मन के विषय) आत्मा है, तो यह भी ठीक नही है। क्योकि धर्म की उत्पत्ति और निरोध दोनो दिखाई देते हैं। जिस की उत्पत्ति और निरोध दोनो दिखाई देते हैं, उसे 'आत्मा' मान लेने पर यह मान लेना होता है कि "मेरा आत्मा उत्पन्न होता है ओर मरता है" इस लिए "धर्म आत्मा है"—यह ठीक नही है। धर्म अनात्म है।

और भिक्षुओ, यदि कोई कहे कि 'मनोविज्ञान आत्मा है' तो यह भी ठीक नही है। क्योकि मनोविज्ञान की उत्पत्ति और निरोध, दोनो दिखाई देते है। जिसकी उत्पत्ति और निरोध दोनो दिखाई देते है, उसे 'आत्मा' मान लेने पर यह मान लेना होता है कि 'मेरा आत्मा उत्पन्न होता तथा मरता है।' इस लिए "मनो-विज्ञान आत्मा है"—यह ठीक नही है। मनो-विज्ञान अनात्म है।

स २१७ भिक्षुओ, यह कही अच्छा है कि वह आदमी जिसने सद्धर्म को नही सुना, चार महाभूतो से बने शरीर को आत्मा समझ ले, लेकिन चित्त को नही। वह क्यो ? यह जो चार महाभूतो से बना हुआ शरीर है यह एक साल—दो साल—तीन साल—चार साल—पॉच साल—छ साल

और सात साल तक भी एक जैसा प्रतीत होता है, लेकिन जिसे चित्त कहते है, मन कहते है, विज्ञान कहते है वह तो रात को और ही उत्पन्न होता है तथा निरोध होता है और दिन को और ही।

इस लिए भिक्षुओ, इसे अच्छी प्रकार समझ कर यथार्थ रूप से 'यूँ समझना चाहिये कि यह जितना भी रूप है, जितनी भी वेदना है, जितनी भी सज्ञा है, जितने भी सस्कार है, जितना भी विज्ञान है—चाहे भूतकाल का हो, चाहे वर्तमान का, चाहे भविष्यत् का, चाहे अपने अन्दर का हो, अथवा बाहर का, चाहे स्थूल हो अथवा सूक्ष्म, चाहे बुरा हो अथवा भला, चाहे दूर हो अथवा समीप—वह "न मेरा है, न वह मै हूँ, न वह मेरा आत्मा है।"'

भिक्षुओ, यदि मुझे (लोग) ऐसा पूछे कि "तुम पहले समय मे थे कि नही थे ? तुम भविष्य मे होगे कि नही होगे ? तुम अब हो कि नही हो ?" तो उनके ऐसा पूछने पर मै उनको यूँ कहूँगा कि "मै पहले समय मे था, 'नही था' ऐसा नही है, मै भविष्यत् मे होऊँगा 'नही होऊँगा' ऐसा नही है, मै अब हूँ, 'नही हूँ' ऐसा नही है।" दी. ९

भिक्षुओ, जो कोई प्रतीत्य-समुत्पाद को समझता है, वह धर्म को समझता है। जो धर्म को समझता है, वह प्रतीत्य-समुत्पाद को समझता है। जैसे भिक्षुओ, गो से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी, घी से घीमण्डा होता है। जिस समय मे दूध होता है, उस समय न उसे दही कहते है, न मक्खन, न घी, न घी का मॉडा। जिस समय वह दही होता है, उस समय न उसे दूध कहते है, न मक्खन, न घी, न घी का मॉडा। इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस समय मेरा भूत-काल का जन्म था, उस समय मेरा भूत-काल का जन्म ही सत्य था, यह वर्तमान और भविष्यत् का जन्म असत्य था। जब मेरा भविष्यत् काल का जन्म होगा, उस समय मेरा भविष्यत्-काल का जन्म ही सत्य होगा, यह वर्तमान और भूत-काल का जन्म असत्य होगा। यह जो अब मेरा वर्तमान मे जन्म है, सो इस समय मेरा यही जन्म सत्य है, भूत-काल का और भविष्यत् का जन्म असत्य है।

भिक्षुओ, यह लौकिक सज्ञा है, लौकिक निरुक्तियाँ है, लौकिक व्यवहार है, लौकिक प्रज्ञप्तियॉ है—इनका तथागत व्यवहार करते है, लेकिन इनमें फँसते नही।

अ ३ भिक्षुओ, 'जीव (आत्मा) और शरीर भिन्न भिन्न है' ऐसा मत रहने से श्रेष्ठ-जीवन व्यतीत नही किया जा सकता। और 'जीव (आत्मा) तथा शरीर दोनो एक है' ऐसा मत रहने से भी श्रेष्ठ-जीवन व्यतीत नही किया जा सकता।

इस लिए भिक्षुओ, इन दोनो सिरे की बातो को छोड कर तथागत बीच के धर्म का उपदेश देते है—

अविद्या के होने से सस्कार, सस्कार के होने से विज्ञान, विज्ञान के होने से नामरूप, नामरूप के होने से छ आयतन, छ आयतनो के होने से स्पर्श, स्पर्श के होने से वेदना, वेदना के होने से तृष्णा, तृष्णा के होने से उपादान, उपादान के होने से भव, भव के होने से जन्म, जन्म के होने से बुढापा, मरना, शोक, रोना-पीटना, दुक्ख, मानसिक चिन्ता तथा परेशानी होती है। इस प्रकार इस सारे के सारे दु ख-स्कन्ध की उत्पत्ति होती है। भिक्षुओ, इसे प्रतीत्य-समुत्पाद कहते है।

अविद्या के ही सम्पूर्ण विराग से, निरोध से सस्कारो का निरोध होता है। सस्कारो के निरोध से विज्ञान-निरोध, विज्ञान के निरोध से नामरूप निरोध, नामरूप के निरोध से छ आयतनो का निरोध, छ आयतनो के निरोध से स्पर्श का निरोध, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध, वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध, तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध, उपादान के निरोध से भव-निरोध, भव के निरोध से जन्म का निरोध, जन्म के निरोध से बुढापे, शोक, रोने-पीटने, दुक्ख, मानसिक चिन्ता तथा परेशानी का निरोध होता है। इस प्रकार इस सारे के सारे दु ख-स्कन्ध का निरोध होता है।

म ४३ भिक्षुओ, जिन प्राणियो पर अविद्या का परदा पडा हुआ है, जो तृष्णा

के वन्धन से बँधे है, वह जहाँ तहाँ आसक्त होत है और इस प्रकार उनको वार वार जन्म लेना पडता है।

भिक्षुओ, जो कर्म लोभ का परिणाम है, लोभ के कारण किया गया है, लोभ से उत्पन्न हुआ है, जहाँ जहाँ जन्म होता है, वह कर्म वही वहीं पकता है। भिक्षुओ, जो कर्म द्वेप का परिणाम है, द्वेप के कारण किया गया है, द्वेप से उत्पन्न हुआ है, जहाँ जहाँ जन्म होता है, वह कर्म वही वहीं पकता है। भिक्षुओ, जो कर्म मूढता का परिणाम है, मूढता के कारण किया गया है, मूढता से उत्पन्न हुआ है, जहाँ जहाँ जन्म होता है वह कर्म वही वहीं पकता है। जहाँ वह कर्म पकता है वहाँ उस कर्म का फल-भुगतना होता है, इसी जन्म मे वा किसी दूसरे जन्म मे। अ. ३।३३

भिक्षुओ, अविद्या के नाश और विद्या के उत्पन्न होने से, तृष्णा के निरोध होने पर पुनर्जन्म नही होता। म ४३ जो अलोभ का परिणाम है, अलोभ के कारण किया गया है, अलोभ से उत्पन्न हुआ है, जो अक्रोध का परिणाम है, अक्रोध के कारण किया गया है, अक्रोध से उत्पन्न हुआ है, जो अमूढता का परिणाम है, अमूढता के कारण किया गया है, अमूढता से उत्पन्न हुआ है, वह कर्म लोभ, क्रोध, मूढता के नही रहने से नाश हो जाता है, जड से उखड जाता है, सिर कटे ताड जैसा हो जाता है, नही रहता, फिर उत्पन्न नहीं होता है। अ ३।३३

यह जो लोग कहते है कि "श्रमण गौतम उच्छेदवादी है, उच्छेदवाद का उपदेश करता है, शिष्यो को उच्छेदवाद की शिक्षा देता है" यदि वह उक्त अर्थो मे कहते है, तो वह ठीक कहते है। भिक्षुओ, मैं राग, द्वेप, मोह तथा अनेक प्रकार के पाप-कर्मो के उच्छेद का उपदेश करता हूँ। अ २

(६)

सम्यक् संकल्प

भिक्षुओ, सम्यक् सकल्प क्या है ?

नैष्क्रम्य सकल्प सम्यक् सकल्प है।

अव्यापादसकल्प सम्यक् सकल्प है।

अविहिंसा सकल्प सम्यक् सकल्प है।

---

(७)

सम्यक् वाणी

अ १० भिक्षुओ, सम्यक् वाणी किसे कहते है ?

भिक्षुओ, एक आदमी झूठ बोलना छोड, झूठ बोलने से दूर रह सत्य बोलने वाला, सच्चा, लोक मे यथार्थ-वादी होता है। वह सभा मे, परिषद् मे, भाई-चारे मे, पचायत मे, वा राज-सभा मे किसी भी जगह जाता है। वहाँ उससे गवाही पूछी जाती है कि 'जो जानते हो, उसे ठीक ठीक कहो'। वह यदि नही जानता है, तो कहता है कि "नही जानता हूँ", यदि जानता है, तो कहता है कि "जानता हूँ।" जिस बात को नही देखता है, उसे कहता है कि नही देखता हूँ, जिसे देखता है, उसे कहता है कि देखता हूँ।

इस प्रकार न वह अपने लिये न किमी दूसरे के लिये, न किसी लौकिक पदार्थ के ही लिये जान वूझ कर झूठ वोलता है।

वह चुगली करना छोड, चुगली करने से दूर रह, यहाँ की वात सुनकर वहाँ नही कहता कि यहाँ के लोगो में झगडा हो जाये, वहाँ की वात सुन कर यहाँ नही कहता कि वहाँ के लोगो मे झगडा हो जाए। वह एक दूसरे से पृथग् पृथग् होने वालो को मिलाता है, मिले हुओ को पृथग् नहीं होने देता। वह ऐसी वाणी वोलता है जिस से लोग इकट्ठे रहे, मिल जुल कर रहे।

वह कठोर वाणी छोड, कठोर शब्दो से दूर रह ऐसी वाणी वोलता है जो कानो को सुख देने वाली, प्रेम भरी, हृदय मे पैठ जाने वाली, सभ्य, वहुत जनो को प्रिय लगने वाली हो। वह जानता है—

(१) जो लोग यह सोचते रहते है कि 'इसने मुझे गाली दी, इसने मुझे मारा, इसने मेरा मजाक उडाया', उनका वैर कभी शान्त नहीं होता। ध. १

(२) वैर वैर से कभी शान्त नही होता। अवैर से ही होता है— यही सनातन वात है।

फजूल वोलना छोडकर, फजूल वोलने से दूर रह कर वह ऐमी वाणी वोलता है जो समयानुकूल हो, यथार्थ हो, वेमतलव न हो, धर्मानुकूल हो नियमानुकूल हो । अ. १

भिक्षुओ, आपस मे इकट्ठे होने पर दो वातो मे से एक वात होनी चाहिये या तो धार्मिक वात-चीत या फिर आर्य-मौन। म. २६

भिक्षुओ, इसे सम्यक् वाणी कहते है।

———

सम्यक् कर्मान्त

अ १० भिक्षुओ, सम्यक् कर्मान्त (= कर्म) क्या है?

एक आदमी जीव-हिंसा को छोड जीव-हिसा से दूर रहता है। वह दण्ड का प्रयोग नही करता, शस्त्र का प्रयोग नहीं करता, लज्जाशील, दयावान्, सभी प्राणियो पर अनुकम्पा करने वाला होता है।

एक आदमी चोरी करना छोड, चोरी करने से दूर रहता है। विना चोरी किए जो प्राप्त होता है, केवल उसी को ग्रहण कर पवित्र जीवन व्यतीत करता है। जो पराया माल है, चाहे ग्राम मे हो, चाहे जगल मे, वह उसकी चोरी नही करता।

एक आदमी काम-भोग का जो मिथ्याचार है, उसे छोड, काम-भोग के मिथ्याचार से दूर रहता है। वह किसी ऐसी स्त्री से काम-भोग का सेवन नही करता जो उसकी अपनी माता के घर मे है, पिता के घर मे है, माता-पिता के घर मे है, भाई के घर मे है, वहिन के घर मे है, रिश्तेदारो के घर मे है। गोत्र वालो के घर मे है, धर्म की लडकी है, जिसका किसी से विवाह हो गया है, जो दासी है, और तो और जो गले मे माला डाले नाचने वाली है।

भिक्षुओ, उसे सम्यक् कर्म कहते है।

---

(९)

सम्यक् आजीविका

भिक्षुओ, सम्यक् आजीविका क्या है ?

भिक्षुओ, आर्य-श्रावक मिथ्या-आजीविका को छोड कर, सम्यक् आजीविका से रोजी कमाता है। यही सम्यक् आजीविका है। दी २२

भिक्षुओ, उपासक को चाहिये कि वह इन पाच व्यापारो मे से किसी एक को भी न करे। कौन से पॉच ? शस्त्रो का व्यापार, जानवरो का व्यापार, मास का व्यापार, मद्य का व्यापार, तथा विप का व्यापार। अ. ५

---

(१०)

सम्यक् व्यायाम (=प्रयत्न)

भिक्षुओ, चार प्रकार के प्रयत्न सम्यक्-प्रयत्न है। कौन से चार ? सयम-प्रयत्न, प्रहाण-प्रयत्न, भावना-प्रयत्न तथा अनुरक्षण-प्रयत्न। अ. ४

भिक्षुओ, सयम-प्रयत्न क्या है ? एक भिक्षु प्रयत्न करता है, जोर लगाता है, मन को काबू मे रखता है कि कोई अकुशल, पापमय ख्याल जो अभी तक उसके मन मे नही है, उत्पन्न न हो।

वह अपनी ऑख से किसी सुन्दर रूप को देखता है, (लेकिन) उसमे न ऑख गडाता है न मजा लेता है। क्योकि कही चक्षु के असयम से लोभ-

द्वेष आदि अकुशल पाप-मय ख्याल घर न कर ले। उन पापमय ख्यालो को दूर रखने के लिए प्रयत्न करता है, अपनी आँख को कावू मे रखता है, अपनी आँख पर सयम रखता है।

वह अपने कान से सुन्दर शब्द सुनता है नासिका से सुगन्धि सूँघता है, जिह्वा से रस चखता है शरीर से स्पर्श करता है नन से सोचता है अपने मन को कावू मे रखता है, अपने मन पर सयम रखता है।

भिक्षुओ, इसे सयम-प्रयत्न कहते है।

ओर भिक्षुओ, प्रहाण-प्रयत्न किसे कहते है?

एक भिक्षु प्रयत्न करता है, जोर लगाता है, मन को कावू मे रखता हे कि ऐसे अकुशल पापमय-ख्याल जो उसके मन मे पैदा हो गए है, वह दूर हो जाएँ।

उसके मन मे जो काम भोग की इच्छा उत्पन्न हुई है, जो क्रोध उत्पन्न हुआ है, जो हिसक विचार उत्पन्न हुआ है, वह ऐसे सभी अकुशल पापमय विचारो को जगह नही देता, छोड देता है, नष्ट कर देता हे, मिटा देता है।

म. २० भिक्षुओ, योग-अभ्यासी भिक्षु को समय समय पर पाँच वातो को मन मे स्थान देना चाहिये —

१—भिक्षुओ, (यदि) किसी भिक्षु को किसी वात पर विचार करने से, किमी चीज को मन मे जगह देने से तृष्णा-द्वेप तथा मूढता से भरे हुए अकुशल पापमय विचार पैदा हो, तो उस भिक्षु को चाहिये कि उस वात को छोड कर दूसरी शुभ-विचार पैदा करने वाली वात वा चीज को मन मे स्थान दे।

२—अथवा उन पापमय विचारो के दुष्परिणाम को सोचे कि "यह (अवाछित) वितर्क अकुशल है, यह वितर्क सदोप है, यह वितर्क दुःख देने वाले है।"

३—अथवा उन वितर्को को मन मे जगह न दे।

४—अथवा उन वितर्को का सस्कार-स्वरूप होना सोचे।

५—अथवा दाँतो पर दाँत रख कर, जिह्वा को तालु मे लगा कर अपने

चित्त से चित्त का निग्रह करे, उसे दवाये, उसे सताप दे।

उसके ऐसा करने से, उस भिक्षु के तृष्णा, द्वेप तथा मूढता से भरे हुए अकुशल पापमय-विचार नष्ट हो जाते है, अस्त हो जाते है। उनके नाश हो जाने से चित्त अपने आप ही स्थिर हो जाता है, शान्त हो जाता है, एकाग्र हो जाता है, समाविस्थ हो जाता है।

भिक्षुओ, इसे प्रहाण-प्रयत्न कहते है।

और भिक्षुओ, भावना-प्रयत्न क्या है?

एक भिक्षु प्रयत्न करता है, जोर लगाता है, मन को कावू मे रखता है कि जो कुशल कल्याण-मय वाते उसमे नही है, वे उसमे आ जाये। वह स्मृति (=निरन्तर जागरूकता), धर्म-विचय, वीर्य्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधी तथा उपेक्षा **बोधि के सात अगो** का अभ्यास करता है, जो कि एकान्त-वास तथा वे-राग होने से उत्पन्न होते है, निरोध मे सम्वन्धित है और उत्सर्ग की ओर ले जाने वाले है। अ. ४

भिक्षुओ, इसे भावना-प्रयत्न कहते है।

ओर भिक्षुओ, अनुरक्षण-प्रयत्न क्या है?

एक भिक्षु प्रयत्न करता है, जोर लगाता है, मन को कावू मे रखता है कि जो अच्छी वाते उस (के चरित्र) मे आ गई है वे नष्ट न हो, उत्तरोत्तर वढे, विपुलता को प्राप्त हो।

वह **समाधि-निमित्तो** की रक्षा करता है। भिक्षुओ, इसे अनुरक्षण-प्रयत्न कहते है। म. ७

(वह सोचता है)—"चाहे मेरा मास-रक्त सव सूख जाये और वाकी रह जाये केवल त्वक्, नसे और हड्डियॉ, जव तक उमे जो किसी भी मनुष्य के प्रयत्न से, शक्ति से, पराक्रम से प्राप्य है, प्राप्त नही कर लूँगा, तव तक चैन नही लूँगा।"

भिक्षुओ, इसे सम्यक्-प्रयत्न (=व्यायाम) कहते है।

---

(११)

सम्यक् स्मृति

८. २२ भिक्षुओ, सम्यक् स्मृति क्या है?

भिक्षुओ, एक भिक्षु काय (=शरीर) के प्रति जागरूक (=कायानु-पश्यी) है। वह प्रयत्नशील, ज्ञानयुक्त, (=होश वाला) तथा लोक मे जो लोभ और दौर्मनस्य है उसे हटाकर विहरता है, वेदनाओ के प्रति जागरूक चित्त के प्रति जागरूक और धर्म (=मन के विषयो) के प्रति जागरूक, प्रयत्नवाला, ज्ञानयुक्त, होशवाला तथा लोक मे जो लोभ और दौर्मनस्य है उसे हटा कर विहरता है।

भिक्षुओ, प्राणियो की विशुद्धि के लिए, शोक तथा कष्ट के उपशमन के लिए, दुक्ख तथा दौर्मनस्य के नाश के लिए, ज्ञान की प्राप्ति के लिए, निर्वाण के साक्षात् करने के लिए यह चारो प्रकार का स्मृति-उपस्थान (=सति-पट्ठान) ही एक मात्र मार्ग है।

भिक्षुओ, भिक्षु कैसे काया मे जागरूक (=कायानुपश्यी) हो विहरता है?—भिक्षुओ, भिक्षु अरण्य मे, वृक्ष के नीचे, एकान्त-घर मे, आसन मार कर, शरीर को सीधा कर, स्मृति को सामने कर वैठता है। वह जानता हुआ साँस लेता है, जानता हुआ साँस छोडता है। लम्वी साँस लेते हुए वह अनुभव करता है कि लम्वी साँस ले रहा हूँ। लम्वी साँस छोडते हुए अनुभव करता है कि लम्वी साँस छोड रहा हूँ। छोटी साँस लेते हुए अनुभव करता है कि छोटी साँस ले रहा हूँ। छोटी साँस छोडते हुए अनुभव करता है कि छोटी साँस छोड रहा हूँ। सारी काया को अनुभव करते हुए साँस लेना सीखता है। सारी काया को अनुभव करते हुए साँस

छोडना, सीखता है। काया के सस्कार को शान्त करते हुए साँस लेना सीखता है, काया के सस्कार को शान्त करते हुए साँस छोडना सीखता है। इस प्रकार अपनी **काया** मे कायानुपश्यी हो विहरता है। दूसरो की काया मे कायानुपश्यी हो विहरता है। अपनी और दूसरो की काया मे कायानुपश्यी हो विहरता है। काया मे उत्पत्ति (-धर्म) को देखता विहरता है। काया मे विनाश (-धर्म) को देखता विहरता है। काया मे उत्पत्ति-विनाश को देखता विहरता है। '**काया है**', करके, इसकी स्मृति, ज्ञान और प्रति-स्मृति की प्राप्ति के अर्थ उपस्थित रहती है वह अनाश्रित हो विहरता है, लोक मे किसी भी वस्तु को (मै, मेरा करके) ग्रहण नही करता। भिक्षुओ, इस प्रकार भी भिक्षु काया मे कायानुपश्यी हो विहार करता है।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु चलता हुआ जानता है कि चल रहा हूँ, खडा हुआ जानता है कि खडा हूँ, बैठा हुआ जानता है कि बैठा हूँ, लेटा हुआ जानता है कि लेटा हूँ। **जिस जिस अवस्था में उसका शरीर होता है, उस उस अवस्था में उसे जानता है**। "भिक्षु समझता है कि मेरी क्रियाओ के पीछे कोई करने वाला नही, कोई आत्मा नही, क्रिया-मात्र है। व्यवहार की सुविधा के लिए हम कहते है "मै चलता हूँ, मै खडा हूँ" इत्यादि।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु जानते हुए आता जाता है, जानते हुए देखता भालता है, जानते हुए सिकोडता-फैलाता है, जानते हुए **सघाटी**, पात्र-चीवर को धारण करता है, जानते हुए असन, पान, खादन, आस्वादन करता है, जानते हुए पाखाना-पेशाब करता है, जानते हुए चलता, खडा-रहता, बैठता, सोता, जागता, बोलता, चुप रहता है।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु पैर के तलवे से ऊपर, केश-मस्तक से नीचे त्वचा से घिरे हुए इस काया को नाना प्रकार की गन्दगी से पूर्ण देखता है

—इस काया मे है—केश-रोम, नख, दाँत, चमडी (=त्वक्), मास, स्नायु, हड्डी (के भीतर) की मज्जा, वृक्क, कलेजा, यकृत, क्लोमक, तिल्ली, फुप्फुस, आँत, पतली आँत (=अन्त-गुण), उदरस्थ (=वस्तुये), पाखाना, पित्त, कफ, पीब, लोहू, पसीना, वर (=मेद), आँसू, चर्वी (=वसा), लार, नासा-मल, जोडो मे का तरल-पदार्थ, और मूत्र। जैसे भिक्षुओ, दोनो ओर मुँह वाली एक बोरी हो और वह नाना प्रकार के अनाज शाली, धान (=व्रीही), मूँग, उडद, तिल, तण्डुल, आदि से भरी हो, उसे आँख-वाला आदमी खोल कर देखे—यह शाली है, यह धान है, यह मूँग है, यह उडद है, यह तिल है, यह तण्डुल है। इसी प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु पैर के तलवे से ऊपर, केश मस्तक के नीचे, त्वचा से घिरे हुए, इस काया को नाना प्रकार की गन्दगी से पूर्ण देखता है।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु इस काया को, (इसकी) स्थिति के अनुसार (इसकी) रचना के अनुसार देखता है। इस काया मे है—पृथ्वी-महाभूत (=धातु) जल-महाभूत, अग्नि-महाभूत, वायु-महाभूत। जैसे कि भिक्षुओ, चतुर **गो-घातक** वा गो-घातक का शागिर्द, गाय को मार कर, उसकी बोटी बोटी पृथक् पृथक् करके चौरस्ते पर बैठा हो। ऐसे ही भिक्षुओ, भिक्षु इस काया को (इसकी) स्थिति के अनुसार (इसकी) रचना के अनुसार देखता है।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु श्मशान मे फेके हुए एक दिन के मरे, दो दिन के मरे, तीन दिन के मरे, फूले, नीले पड गये, पीब भरे, (मृत-) शरीर को देखे। (और उससे) वह अपनी इसी काया का ख्याल करे—यह काया भी इसी स्वभाव वाली, ऐसे ही होने वाली, इससे न बच सकने वाली है।

इस प्रकार काया के भीतर कायानुपश्यी हो विहरता है। काया के बाहर कायानुपश्यी हो विहरता है। काया के अन्दर-बाहर कायानुपश्यी हो विहरता है। काया मे उत्पत्ति (-धर्म) को देखता विहरता है। काया

मे विनाश (=धर्म) को देखता विहरता है। 'काया है' करके इसकी स्मृति ज्ञान और प्रति-स्मृति की प्राप्ति के अर्थ उपस्थित रहती है। वह अनाश्रित हो विहरता है। लोक मे किसी भी वस्तु को, (मै मेरा करके) ग्रहण नही करता। भिक्षुओ, इस प्रकार भी भिक्षु काया मे कायानुपश्यी हो विहार करता है।

भिक्षुओ, जिसने कायानुस्मृति का अभ्यास किया है, उसे वढाया है, उस भिक्षु को दस लाभ होने चाहिये। कौन से दस? म॰ ११९

१—वह अरति-रति-सह (=उदासी के सामने डटा रहने वाला) होता है, उसे उदासी परास्त नही कर सकती, वह उत्पन्न उदासी को परास्त कर विहरता है।

२—वह भय-भैरव-सह होता है। उसे भय-भैरव परास्त नही कर सकता। वह उत्पन्न भय-भैरव को परास्त कर विहरता है।

३—शीत, उष्ण, भूख-प्यास, डक मारने वाले जीव, मच्छर, हवा-धूप, रेगने वाले जीवो के आघात, दुरुक्त, दुरागत वचनो, तथा दुख-दायी, तीव्र, कटु, प्रतिकूल, अरुचिकर, प्राण-हर शारीरिक पीडाओ को सह सकने वाला होता है।

४—सुखपूर्वक विहार करने के लिए उपयोगी चारो चैतसिक-ध्यानो को इसी जन्म मे विना कठिनाई के प्राप्त करता है।

५—वह अनेक प्रकार की ऋद्धियो को प्राप्त करता है।

६—वह अमानुष, विशुद्ध दिव्य-श्रोत्र से दोनो प्रकार के शब्द सुनता है। दिव्य (शब्दो) को भी, मानुष (शब्दो) को भी, दूर के शब्दो को भी, समीप के शब्दो को भी।

७—दूसरे सत्वो के, दूसरे व्यक्तियो के चित्त को चित्त से जान लेता है।

८—अनेक प्रकार के पूर्व-निवासो (=पूर्वजन्मो) को जान लेता है।

९—अमानुष, दिव्य, विशुद्ध चक्षु से मरते-उत्पन्न होते, अच्छे-बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगति-प्राप्त, दुर्गति-प्राप्त सत्वो को जानता है—सत्वो के कर्मानुसार सत्वो की उत्पत्ति को जानता है।

१०—आश्रवो के क्षय मे जो चित्त की आश्रव-रहित विमुक्ति है, प्रज्ञा-की विमुक्ति हैं, उसे इसी जन्म मे स्वय जान कर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है।

भिक्षुओ, भिक्षु वेदनाओ मे वेदनानुपश्यी कैसे होता है?

दी २२ भिक्षुओ, भिक्षु सुख-वेदना को अनुभव करते हुए जानता है कि सुख-वेदना अनुभव कर रहा हूँ। दु ख-वेदना को अनुभव करते हुए जानता है कि दु ख-वेदना अनुभव कर रहा हूँ। अदुख-असुख वेदना को अनुभव करते हुए जानता ह कि अदुख-असुख वेदना को अनुभव कर रहा हूँ। भोग-पदार्थ युक्त (= सामिप) सुख-वेदना को अनुभव करते हुए जानता है कि भोग-पदार्थ युक्त सुख-वेदना को अनुभव कर रहा हूँ। भोग-पदार्थ-रहित सुख वेदना को अनुभव करते हुए जानता है कि भोग-पदार्थ-रहित सुख-वेदना को अनुभव कर रहा हूँ। भोग-पदार्थ सहित दुख-वेदना को अनुभव करते हुए जानता है कि भोग-पदार्थ-सहित दु ख-वेदना को अनुभव कर रहा हूँ। भोग-पदार्थ रहित दु ख-वेदना को अनुभव करते हुए जानता है कि भोग-पदार्थ रहित दु ख-वेदना को अनुभव करता हूँ। भोग-पदार्थ-युक्त अदुख-असुख वेदना को अनुभव करते हुए जानता है कि भोग-पदार्थ युक्त अदुख-असुख वेदना को अनुभव करता हूँ। भोग-पदार्थ रहित अदुख-असुख वेदना को अनुभव करते हुए जानता है कि भोग-पदार्थ-रहित असुख-अदुख वेदना को अनुभव करता हूँ।

इस प्रकार अपने अन्दर की वेदनाओ मे वेदनानुपश्यी हो विहरता है। बाहर की वेदनाओ मे वेदनानुपश्यी हो विहरता है। भीतर-बाहर की वेदनाओ में वेदनानुपश्यी हो विहरता है। वेदनाओ मे उत्पत्ति (-धर्म) को देखता है। वेदनाओ मे वय (-धर्म) को देखता है। वेदनाओ मे समुदय-वय (-धर्म) को देखता है। 'वेदना हैं' करके इसकी स्मृति ज्ञान और प्रति-स्मृति की प्राप्ति के लिए उपस्थित रहती है। वह अनाश्रित हो विहरता है। लोक मे किसी भी वस्तु को (मैं, मेरा करके) ग्रहण नही करता।

इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु **वेदनाओ में वेदनानुपश्यी हो विहरता है।**

भिक्षुओ, भिक्षु **चित्त में** चित्तानुपश्यी हो कैसे विहरता है ?

भिक्षुओ, भिक्षु स-राग चित्त को जानता है कि यह स-राग चित्त है। राग-रहित चित्त को जानता है कि यह राग-रहित है। स-द्वेप चित्त को जानता है कि यह स-द्वेप है। द्वेप-रहित चित्त को जानता है कि यह द्वेप-रहित है। स-मोह (=मूढता) चित्त को जानता है कि यह स-मोह है। मूढता-रहित चित्त को जानता है कि यह मूढता-रहित है। स्थिर चित्त को जानता हे कि यह स्थिर है, चचल चित्त को जानता हे कि यह चचल है। महापरिमाण (=महद्गत)-चित्त को जानता है कि यह महद्गत चित्त है, अमहद्गत-चित्त को जानता है कि यह अ-महद्गत हे। स-उत्तर चित्त को जानता हे कि यह स-उत्तर है। अनुत्तर (=उत्तम) चित्त को जानता है कि यह अनुत्तर है। एकाग्र चित्त (=समाहित) को जानता है कि यह एकाग्र हे। एकाग्रता-रहित चित्त को जानता है कि यह एकाग्रता-रहित है। विमुक्त चित्त को जानता है कि यह विमुक्त है। अ-विमुक्त चित्त को जानता है कि यह अ-विमुक्त है।

इस प्रकार **भीतरी चित्त** मे चित्तानुपश्यी हो विहरता है। वाहरी चित्त मे चत्तानुपश्यी हो विहरता है। भीतर-वाहर चित्त मे चित्तानुपश्यी हो विहरता है। चित्त मे उत्पत्ति (=धर्म) को देखता है। चित्त मे वय (=धर्म) को देखता है। चित्त मे उत्पत्ति-वय (=धर्म) को देखता है। 'चित्त है' करके इसकी स्मृति ज्ञान और प्रति-स्मृति की प्राप्ति के लिए उपस्थित रहती है। वह अनाश्रित हो विहरता है। लोक मे किसी भी वस्तु को (मैं, मेरा करके) ग्रहण नही करता।

इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु चित्त मे चित्तानुपश्यी हो विहरता है।

भिक्षुओ, भिक्षु **धर्मो** (=मन के विपयो) मे कैसे धर्मानुपश्यी विहरता है ?

भिक्षुओ, भिक्षु **पाँच नीवरणो** (=बन्धनो) को देखता हुआ धर्मो मे धर्मानुपश्यी होता है।

उसमे कामुकता (=**कामच्छन्द**) विद्यमान होने पर "कामुकता है" जानता है। उसमे कामुकता नही होने पर "कामुकता नही है" जानता है। कामुकता की उत्पत्ति कैसे होती है—यह जानता है। उत्पन्न कामुकता का कैसे नाश होता है—यह जानता है। नष्ट हुई कामुकता फिर कैसे नहीं उत्पन्न होती है—यह जानता है।

उसमे क्रोध (=व्यापाद) विद्यमान होने पर "क्रोध है" जानता है। क्रोध नही होने पर 'क्रोध नही है'—जानता है। क्रोध की उत्पत्ति कैसे होती है—यह जानता है। उत्पन्न क्रोध का कैसे नाश होता है—यह जानता है। नष्ट हुआ क्रोध फिर कैसे नहीं उत्पन्न होता है—यह जानता है।

उसमे आलस्य (=स्त्यान-मृद्ध) विद्यमान होने पर "आलस्य है" जानता है। उसमे आलस्य नही होने पर "आलस्य नहीं है" जानता है। आलस्य की उत्पत्ति कैसे होती है—यह जानता है। उत्पन्न आलस्य का कैसे नाश होता है—यह जानता है। नष्ट हुआ आलस्य कैसे फिर नही उत्पन्न होता है—यह जानता है।

उसके भीतर उद्धतपन-पछतावा (**औद्धत्य-कौकृत्य**) विद्यमान रहने पर "उद्धतपन तथा पछतावा है" जानता है। उसके भीतर उद्धतपन तथा पछतावा नही होने पर उद्धतपन तथा पछतावा नहीं है जानता है। उद्धतपन तथा पछतावे की उत्पत्ति कैसे होती है—यह जानता है। उत्पन्न उद्धतपन तथा पछतावे का कैसे नाश होता है—यह जानता है। नष्ट हुआ उद्धतपन तथा पछतावा फिर कैसे नही उत्पन्न होता है—यह जानता है।

उसके भीतर सशय (=**विचिकित्सा**) विद्यमान रहने पर "सशय है" जानता है। उसके भीतर सशय नही रहने पर 'सशय नही है' जानता है। सशय की उत्पत्ति कैसे होती है—यह जानता है। उत्पन्न सशय कैसे नष्ट

होता है—यह जानता है। नष्ट सशय फिर कैसे नही उत्पन्न होता है—यह जानता है।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु पॉच उपादान-स्कन्ध धर्मों मे धर्मानुपश्यी हो विहरता है।

भिक्षु चिन्तन करता है—"यह रूप है, यह रूप का समुदय है, यह रूप का अस्त होना है, यह वेदना है, यह वेदना का समुदय है, यह वेदना का अस्त होना है, यह सञ्ञा है, यह सञ्ञा का समुदय है, यह सञ्ञा का अस्त होना है, यह सस्कार है, यह सस्कारो का समुदय है, यह सस्कारो का अस्त होना है, यह विज्ञान है, यह विज्ञान का समुदय है, यह विज्ञान का अस्त होना है।"

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु छ अन्दरूनी-बाहरी आयतनो मे धर्मानुपश्यी हो विहरता है।

भिक्षुओ, भिक्षु ऑख को समझता है, रूप को समझता है और ऑख तथा रूप के हेतु से जो **सयोजन** उत्पन्न होता है, उसे समझता है। सयोजन की उत्पत्ति कैसे होती है—यह जानता है। उत्पन्न सयोजन का कैसे नाश होता है—यह जानता है। नष्ट सयोजन फिर कैसे नही उत्पन्न होता है—यह जानता है।

भिक्षुओ, भिक्षु श्रोत्र को समझता है, शब्द को समझता है और श्रोत्र तथा शब्द के हेतु से जो सयोजन उत्पन्न होता है, उसे समझता है। सयोजन की उत्पत्ति कैसे होती है—यह समझता है। उत्पन्न सयोजन का कैसे नाश होता है—यह समझता है। नष्ट सयोजन फिर कैसे नही उत्पन्न होता है—यह समझता है।

भिक्षुओ, भिक्षु घ्राण को समझता है, गन्ध को समझता है और घ्राण तथा गन्ध के हेतु से जो सयोजन उत्पन्न होता है, उसे समझता है। सयोजन की उत्पत्ति कैसे होती है—यह समझता है। उत्पन्न सयोजन का कैसे नाश होता है—यह समझता है। नष्ट सयोजन फिर कैसे नही उत्पन्न होता है—यह समझता है।

भिक्षुओ, भिक्षु जिह्वा को समझता है, रस को समझता है और जिह्वा तथा रस के हेतु से जो सयोजन उत्पन्न होता है, उसे समझता है। सयोजन की उत्पत्ति कैसे होती है—यह समझता है। उत्पन्न सयोजन का कैसे नाश होता है— यह समझता है। नष्ट सयोजन फिर कैसे उत्पन्न नही होता है—यह समझता है।

भिक्षुओ, भिक्षु काय को समझता है, स्पर्शतव्य को समझता है, और काय तथा स्पर्शतव्य के हेतु से जो सयोजन उत्पन्न होता है, उसे समझता है। सयोजन की उत्पत्ति कैसे होती है—यह समझता है। उत्पन्न सयोजन का कैसे नाश होता है—यह समझता है। नष्ट सयोजन फिर कैसे उत्पन्न नही होता है—यह समझता है।

भिक्षुओ, भिक्षु मन को समझता है, मन के विषयो(=धर्मो)को समझता है और मन तथा धर्मो के हेतु से जो सयोजन उत्पन्न होता है, उसे समझता है। सयोजन की उत्पत्ति कैसे होती है—यह समझता है। उत्पन्न सयोजन का कैसे नाश होता है—यह समझता है। नष्ट सयोजन फिर कैसे उत्पन्न नहीं होता—यह समझता है।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु सात बोधि-अङ्ग धर्मो मे धर्मानुपश्यी हो विहरता है।

भिक्षुओ, भिक्षु स्मृति सम्बोधि-अङ्ग, धर्म-विचय सम्बोधि-अङ्ग, वीर्य्य-सम्बोधि-अङ्ग, प्रीति-सम्बोधि-अङ्ग, प्रश्रब्धि सम्बोधि-अङ्ग, तथा उपेक्षा सम्बोधि-अङ्ग,—इन सब के विद्यमान रहने पर 'विद्यमान हैं' जानता है, विद्यमान नहीं रहने पर 'विद्यमान नही हैं' जानता है। इन सब की उत्पत्ति कैसे होती है—यह जानता है। उत्पन्न सम्बोधि-अङ्गो की भावना कैसे पूरी होती है—यह जानता है।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु, चार आर्य-सत्य धर्मो मे धर्मानुपश्यी हो विहरता है।

भिक्षुओ, भिक्षु 'यह दु:ख है'— इसे यथार्थ रूप से जानता है। 'यह

दु ख-समुदय है'—इसे यथार्थ रूप से जानता है। 'यह दु ख-निरोध है'—इसे यथार्थ रूप से जानता है। 'यह दु ख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है'—इसे यथार्थ-रूप से जानता है। इस प्रकार भीतरी-धर्मो मे धर्मानुपश्यी हो विहरता है। बाहरी-धर्मो मे धर्मानुपश्यी हो विहरता है। भीतर-बाहर धर्मो मे धर्मानुपश्यी हो विहरता है। धर्मो मे उत्पत्ति (–धर्म) को देखता है। धर्मो मे व्यय (–धर्म) को देखता है। धर्मो मे समुदय - व्यय धर्म को देखता है। 'धर्म है' करके इसकी स्मृति ज्ञान और प्रति-स्मृति की प्राप्ति के लिए उपस्थित रहती है। वह अनाश्रित हो विहरता है। लोक मे किसी भी वस्तु को (मै, मेरा करके) ग्रहण नही करता।

भिक्षुओ, जो कोई भिक्षु इन चार स्मृति-उपस्थानो की सात वर्ष तक भावना करे, उसे दो फलो मे से एक फल की प्राप्ति अवश्य होगी—इसी जन्म मे अर्हत्व (=अञ्ञा), उपादान-अवशिष्ट रहने पर अनागामी-भाव। भिक्षुओ, सात वर्ष की बात रहने दो   छ वर्ष पाँच वर्ष   चार वर्ष   तीन वर्ष   दो वर्ष   वर्ष   मास   सप्ताह भर भी भावना करे, तो उसे दो फलो मे से एक फल अवश्य प्राप्त होगा—इसी जन्म मे अर्हत्व वा उपादान अवशिष्ट रहने पर अनागामी-भाव।

———

(१२)

सम्यक् समाधि

म. ४४ भिक्षुओ, यह जो चित्त की एकाग्रता है—यही समाधि है। चारो स्मृति-उपस्थान है समाधि के निमित्त, और चारो सम्यक्-प्रयत्न है समाधि की सामग्री। इन्ही (आठो) धर्मो के सेवन करने, भावना करने तथा बढाने का नाम है समाधि-भावना।

म २७ भिक्षुओ, भिक्षु इस आर्य-सदाचार से युक्त हो, इस आर्य-इन्द्रिय–सयम से युक्त हो, स्मृति ओर ज्ञान से भी युक्त हो, ऐसे एकान्त-स्थान मे रहता है जैसे आरण्य, वृक्ष की छाया, पर्वत, कदरा, गुफा, श्मशान, जगल, खुले आकाश तथा पुवाल के ढेर पर। वह पिड-पात से लौट भोजन कर चुकने पर पालथी मार शरीर को सीधा रख स्मृति को सामने कर बैठता है।

वह सासारिक लोभो को छोड लोभ-रहित चित्त वाला हो विचरता है। चित्त से लोभ को दूर करता है। वह क्रोध को छोड क्रोध-रहित चित्तवाला हो, सभी प्राणियो पर दया करता हुआ विचरता है। चित्त से क्रोध को दूर करता है। वह आलस्य को छोड आलस्य से रहित हो, रोशन-दिमाग (=आलोकसञ्ञी), स्मृति तथा ज्ञान से युक्त विचरता है। वह चित्त से आलस्य को दूर करता है। वह उद्धतपने तथा पछतावे को छोड उद्धतता-रहित शात चित्त हो विचरता है। चित्त से उद्धतता को दूर करता है। वह सशय को छोड सशय-रहित हो विचरता है। वह अच्छी अच्छी वातो (=कुशल धर्मो) के विपय मे सदेह-रहित होता है। चित्त से सन्देह को दूर करता है।

वह चित्त के उपक्लेश, प्रज्ञा को दुर्बल करने वाले पाँच वन्धनो को छोड,

काम-वितर्क से रहित हो, बुरे विचारो से रहित हो प्रथम-ध्यान को प्राप्त कर विचरता है, जिसमे वितर्क और विचार है, जो एकान्त-वास से उत्पन्न होता है, जिसमे प्रीति और सुख रहते है।

भिक्षुओ, प्रथम-ध्यान मे पॉच वाते नही रहती है और पॉच रहती है। म ४३ भिक्षुओ, जो भिक्षु प्रथम-ध्यान की अवस्था मे होता है, उस की कामुकता विनष्ट रहती है, क्रोध विनष्ट रहता है, आलस्य विनष्ट रहता है। उद्धतपन और पछतावा विनष्ट रहता है। सशय विनष्ट रहता है। वितर्क रहता है, विचार रहता है, प्रीति रहती है, सुख रहता है और रहती है चित्त की एकाग्रता।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु वितर्क और विचारो के उपशमन से अन्दर की म. २७ प्रसन्नता और एकाग्रता रूपी द्वितीय-ध्यान को प्राप्त होता है, जिसमे न वितर्क होते है, न विचार, जो समाधि मे उत्पन्न होता है और जिसमे प्रीति तथा सुख रहते है।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु प्रीति से भी विरक्त हो उपेक्षावान् बन विचरता है। वह स्मृतिमान्, ज्ञानवान् होता है और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तृतीय-ध्यान को प्राप्त करता है, जिसे पडित-जन 'उपेक्षावान्, स्मृतिवान्, सुखपूर्वक विहार करने वाला' कहते है।

और फिर भिक्षुओ, भिक्षु सुख और दुख—दोनो के प्रहाण से, सौमनस्य और दौर्मनस्य के पहले ही अस्त हुए रहने से (उत्पन्न) चतुर्थ-ध्यान को प्राप्त करता है, जिसमे न दुःख होता है, न सुख, और होती है (केवल) उपेक्षा तथा स्मृति की परिशुद्धि।

भिक्षुओ, भिक्षु प्रथम-ध्यान द्वितीय-ध्यान तृतीय-ध्यान तथा अ. ९ चतुर्थ-ध्यान को प्राप्त कर विचरता है। वह रूप, वेदना, सञ्ज्ञा, सस्कार, विज्ञान—सभी धर्मो को अनित्य समझता है, दुःख समझता है, रोग समझता है, फोडा समझता है, शल्य समझता है, पाप समझता है, पीडा समझता है, पर समझता है, नष्ट होने वाला समझता है, शून्य समझता है,

और समझता है अनात्म। वह (अपने) मन को उन धर्मो (=विपयो) की ओर जाने से रोकता है। अपने मन को उन धर्मो की ओर जाने से रोक कर वह उस अमृत-तत्व की ओर ले जाता है जो कि "शान्त है, श्रेष्ठ है, सभी सस्कारो का शमन है, सभी चित्तमलो का त्याग है, तृष्णा का क्षय है, विराग-स्वरूप तथा निरोध-स्वरूप निर्वाण है।" वहा पहुँचने से उसके आश्रवो का क्षय हो जाता है।

और यदि आश्रव-क्षय नही भी होता, तो उसी धर्म-प्रेम के प्रताप से पहले पाँच बन्धनो का नाश कर अयोनिज देवयोनि मे उत्पन्न (=औप-पातिक) होता हे। वही, उसका निर्वाण होता है—फिर उस लोक से लौट कर ससार मे नही आता।

भिक्षुओ, भिक्षु एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा, चौथी दिशा, ऊपर, नीचे, तिर्छे, हर जगह, हर प्रकार से, सारेके सारे लोक के प्रति, विपुल, महान्, प्रमाण-रहित, निर्वैर, निष्क्रोध मेत्री-चित्त वाला, करुणा-पूर्ण चित्त वाला, मुदिता-युक्त चित्त वाला ओर उपेक्षा-युक्त चित्त वाला हो विहरता है। वह सव रूप-सज्ञाओ को पार कर प्रतिघ-सज्ञाओ को अस्त कर, नानत्व सञ्ज्ञा को मन से निकाल 'आकाश अनत है' करके **आकाशा-नन्त्यायतन** को प्राप्त हो विचरता है। 'आकाशानन्त्यायतन को पार कर 'विज्ञान अनत है' करके **विज्ञानानन्त्यायतन** को प्राप्त हो विहरता है। विज्ञाणानन्त्यायतन को पार कर 'कुछ नही है' करके **आकिञ्चन्यायतन** को प्राप्त हो विहरता है। जो वेदना, सञ्ज्ञा, सस्कार, तथा विज्ञान है, वह उन सभी धर्मो को अनित्य समझता है, दु ख समझता हे, रोग समझता है, फोडा समझता है, शल्य समझता है, पाप समझता हे, पीडा समझता है, पर समझता है, नष्ट होने वाला समझता है, शून्य समझता है और समझता है अनात्म। वह (अपने) मन को उन धर्मो की ओर जाने से रोकता है। अपने मन को उन धर्मो की ओर जाने से रोक कर वह उस अमृत-तत्व की ओर ले जाता है जो कि 'शान्त है, श्रेष्ठ हे, सभी सस्कारो का शमन है, सभी

चित्तमलो का त्याग है, तृष्णा का क्षय है, विराग स्वरूप तथा निरोध स्वरूप निर्वाण है।" वहाँ पहुँचने मे उसके आश्रवो का क्षय हो जाता है।

और यदि आश्रव-क्षय नही भी होता, तो उसी धर्म-प्रेम के प्रताप मे पहले के पाँच बन्धनो का नाश कर अयोनिज देवयोनि मे उत्पन्न होता है। वही उसका निर्वाण होता है—फिर उस लोक से लौट कर ससार मे नही आता।

सभी 'आकिञ्चन्यायतनो' को पार कर 'नैव सज्ञा-ना-सज्ञा-आयतन'-को प्राप्त हो विहरता है। सभी 'नैवसज्ञा न असज्ञा-आयतन'को पार कर **'सज्ञा की अनुभूति के निरोध'** को प्राप्त कर विहरता है।

भिक्षुओ, जब (भिक्षु) भव वा विभव किसी के लिए भी न प्रयत्न करता है, न इच्छा करता है, तो वह लोक मे (मै, मेरा करके) कुछ भी ग्रहण नही करता। जब कुछ ग्रहण नही करता तो उसको परिताप भी नही होता। जब परिताप नही होता तो वह अपने ही निर्वाण पाता है। उसको ऐसा होता है कि जन्म-(मरण) जाता रहा, ब्रह्मचरियवास (का उद्देश पूरा) हो गया, जो करना था कर लिया, अब यहाँ के लिए शेष कुछ नही रहा।

वह सुख-वेदना को अनुभव करता है, दु ख वेदना को अनुभव करता, अदुख-असुख वेदना को अनुभव करता है। वह उस वेदना को अनित्य समझता है, अनासक्त रहकर ग्रहण करता है, उसका अभिनदन नही करता, वह उसका अनुभव अलग रह कर ही करता है। वह समझता है कि शरीर छूटने पर, मरने के बाद, जीवन के परे अनासक्त रहकर अनुभव की गई यह वेदनाये यही ठडी पड जायेगी।

जिस प्रकार भिक्षुओ, तेल के रहने से, बत्ती के रहने से दीपक जलता है और उस तेल तथा बत्ती के समाप्त हो जाने तथा दूसरी (नई तेल-बत्ती) के न रहने से दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकार भिक्षुओ, शरीर छूटने पर, मरने के बाद, जीवन के परे, अनासक्त रहकर अनुभव की गई यह वेदनाये यही ठडी पड जाती है।

म. १४० भिक्षुओ, यही परम् आर्य-प्रज्ञा है—यह जो सभी दु खो के क्षय का ज्ञान। उसकी यह विमुक्ति सत्य मे स्थित होती है, अचल होती है।

भिक्षुओ, यही परम् आर्य-सत्य है यह जो अक्षय-निर्वाण।

भिक्षुओ, यही आर्य-त्याग है, यह जो सभी उपाधियो का त्याग।

भिक्षुओ, यही परम् आर्य-उपशमन है, यह जो राग-द्वेप-मोह का उपशमन।

"मै हूँ"—यह एक मानता है, "मै यह हूँ"—यह एक मानता है, "मै होऊँगा"—यह एक मानता है, "मै नही होऊँगा"—यह एक मानता है, "मै रूपी होऊँगा"—यह एक मानता है, "मै अरूपी होऊँगा"—यह एक मानता है, "मै सज्ञी होऊँगा"—यह एक मानता है, "मै असज्ञी होऊँगा"—यह एक मानता है, "मै न सज्ञी-नासज्ञी" होऊँगा—यह एक मानता है—भिक्षुओ, मानता रोग है, मानता फोडा है, मानता शल्य है। सभी मान्यताओ के उपशमन होने पर कहा जाता है—"मुनि शान्त है"।

भिक्षुओ, जो शान्त-मुनि है, न उसका जन्म है, न जीवन है, न मरण है, न चञ्चलता है, न इच्छा है, क्योकि भिक्षुओ, उसे वह (हेतु) ही नही है जिससे पैदा होना हो। जव पैदा ही होना नही तो जीयेगा क्या? जव जीएगा नही, तो चञ्चल क्या होगा? जब चचल नही होगा तो, इच्छा क्या करेगा?

म २९ भिक्षुओ, इस श्रेष्ठ-जीवन का उद्देश्य न तो लाभ-सत्कार की प्राप्ति, न प्रशसा की प्राप्ति, न सदाचार के नियमो का पालन करना, न समाधि-लाभ और न ज्ञानी वनना ही। भिक्षुओ, जो चित्त की अचल विमुक्ति है वही इस श्रेष्ठ-जीवन का असली उद्देश्य है, वही सार है, उसी पर खातमा है।

म. ५१ भिक्षुओ, पूर्व मे जितने भी अर्हत सम्यक् सम्बुद्ध हुए उन्होने भिक्षु-सघ को इसी आदर्श की ओर अच्छी तरह लगाया, जिसकी ओर इस समय मै ने अच्छी तरह लगाया है।

और भिक्षुओ, भविष्यत् मे जितने भी अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध होगे—वे भी भिक्षु-सघ को इसी आदर्श की ओर लगायेगे, जिसकी ओर इस समय मै ने अच्छी तरह लगाया है।

शिष्यो के हितैषी शास्ता को अपने शिष्यो पर दया करके जो करना चाहिये, वह मै ने कर दिया। भिक्षुओ, यह (सामने) वृक्षो की छाया है। यह एकान्त-घर है। भिक्षुओ, ध्यान लगाओ, प्रमाद मत करो। देखना, पीछे मत पछताना। यही हमारी अनुशासना है। अ. ७

परिशिष्ट

पृ० १. अर्हत्—जीवन्मुक्त।

तथागत—बुद्ध के तथागत, लोकनाथ, सुगत, महामुनि, लोकगुरु, धर्म स्वामी आदि अनेक नाम हैं। तथागत=तथा आगत =वैसे आये जैसे और बुद्ध।

मृगदाव—(=मृगो का जगल) वर्तमान सारनाथ (बनारस)।

श्रमण—साधु।

मार—शैतान=कामदेव।

आर्य-सत्य—(=श्रेष्ठ-सत्य)।

बारह प्रकार से—प्रत्येक *आर्य-सत्य के बारे में (१) यह आर्यसत्य है।* (२) यह आर्य-सत्य जानना चाहिये। (३) यह आर्यसत्य जान लिया गया है—इस प्रकार तेहरा ज्ञान।

पृ० ३. पॉच उपादान स्कन्ध—(देखो पृष्ठ ४)

आयतन—इन्द्रियाँ।

पृ० ४. रूप उपादान स्कन्ध (दे० पृ० ५)

वेदना उपादान स्कन्ध (इन्द्रियो और विषयो का सयोग होने पर किसी भी प्रकार की अनुभूति (Sensation)

सज्ञा उपादान स्कन्ध—वेदना के अनन्तर किसी भी अस्तित्व का नाम-करण। (Perception)

सस्कार उपादान स्कन्ध—चारो स्कन्धो से अवशिष्ट चैतसिकक्रियाएँ।

विज्ञान उपादान स्कन्ध—विशिष्ट-ज्ञान (Consciousness)

पृ० ५. पृथ्वी-धातु—'पृथ्वी' ग्रहण न करके पृथ्वी-पन ग्रहण करना चाहिये (inertia)।

जल धातु—जल नही जलत्व, जिसमे जोडने की शक्ति है (Cohesion)।
अग्नि धातु—आग नही अग्नित्व, या अग्निपन (Radiation)।
वायु-धातु—वायु नही वायुपन (Vibration)।

पृ० ६. **उनका सयोग**—किसी भी वस्तु के ज्ञान के लिए वह वस्तु चाहिये, उस वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने वाली इन्द्रिय चाहिये और चित्त चाहिये। इनमे से किसी एक के भी न रहने से ज्ञान नही हो सकता। चित्र के ज्ञान के लिए चित्र होना ही चाहिये, आँख होनी ही चाहिये, लेकिन उनके साथ चित्त भी होना चाहिये।

पृ० ७. **बिना हेतु के विज्ञान**—प्रतीत्य-समुत्पाद बुद्ध-धर्म का विशिष्ट सिद्धान्त है, जिसके अनुसार सभी उपादान-स्कन्ध सहेतुक है। विज्ञान की उत्पत्ति भी सहेतुक है।

विज्ञान—'विज्ञान' शब्द यहाँ दो अर्थो मे है साधारण-अर्थ मे सारी चित्त-क्रिया के लिए और विशेष अर्थ मे, वेदना, सज्ञा, सस्कार आदि से रहित चित्त-क्रिया के लिए।

सस्कार—यहाँ सस्कार शब्द से कायिक-सस्कार और मनो-सस्कार, दोनो ग्राह्य है।

पृ० ११. **काम-तृष्णा**—इन्द्रिय-जनित सुख की तृष्णा।

भव-तृष्णा—व्यक्तिगत जीवन स्थायी रूप से बना रहे देखने की तृष्णा। जिस आदमी को "आत्मा" के अस्तित्व मे, उसके नित्यत्व मे विश्वास होता है, वही इस प्रकार की तृष्णा का शिकार होता है।

विभव-तृष्णा—इसी जन्म मे अधिक से अधिक 'मजा' लेने की तृष्णा। जिस आदमी का यह मिथ्या-मत हो कि जन्म से लेकर मरने तक ही मेरा अस्तित्व है, और जन्म से पूर्व तथा मृत्यु के पश्चात् मेरे जीवन का किसी भी अस्तित्व से किसी प्रकार का सम्बन्ध नही, वही इस विभव-तृष्णा का शिकार होता है। विभव-तृष्णा के वशीभूत हो जाने पर या तो वह एक दम निराशावाद के गढे मे

जा गिरता है या फिर सदाचार को बिल्कुल तिलाञ्जलि दे 'परम स्वतन्त्र' हो विचरता है।

पृ० १३ आँख से रूप देखता हूँ—वास्तव मे आँख तो केवल एक साधन है। चक्षु-विज्ञान द्वारा आँख की देखने की शक्ति को साधन बना देखने की क्रिया होती है।

पृ० १७. निर्वाण—इसी शरीर मे राग-द्वेष आदि चित्त-मलो का नष्ट होना क्लेश-निर्वाण ओर क्लेश-रहित अर्हत् की मृत्यु होने पर भविष्य मे उसके जन्म की सम्भावना के नष्ट होने का नाम स्कन्ध-निर्वाण है इस प्रकार निर्वाण के दो भेद किये जाते हैं।

पृ० १८ आयतन—अस्तित्व।

पृ० १९ सम्यक्-दृष्टि—यथार्थ-ज्ञान=यथार्थ-समझ। यथार्थ-ज्ञान के बिना कोई भी सत्कार्य्य नही हो सकता। इसीलिए अष्टागिक मार्ग मे सम्यक्-दृष्टि को प्रथम स्थान मिला है। विस्तार के लिए देखो पृ० २१

सम्यक् सकल्प—यथार्थ-ज्ञान के अविरोधी सकल्प। प्रत्येक सदविचार मे आर्य अष्टागिक-मार्ग के कम से कम चार अग अवश्य रहते है—(१) सम्यक् सकल्प, (२) सम्यक् व्यायाम, (३) सम्यक् स्मृति, (४) सम्यक् समाधि।

सम्यक् कर्मान्त—दुष्कर्मो से बचना।

सम्यक् व्यायाम—ग्रहण की हुई बुरी आदतो को छोडने, न ग्रहण की हुई बुरी आदतो को न ग्रहण करने, न ग्रहण की हुई अच्छी आदतो को ग्रहण करने ओर ग्रहण की हुई अच्छी आदतो को जारी रखने मे जो मानसिक प्रयत्न करना पडता है, यही सम्यक् व्यायाम है।

सम्यक् स्मृति—स्मृति का अर्थ प्राय याददाश्त=स्मरण-शक्ति लिया जाता है। लेकिन यहाँ स्मृति का अर्थ है जागरूकता। (Pre-

sence of mind) छोटे से छोटे और वडे से वडे प्रत्येक कार्य्य को करते समय यह ज्ञान रहे कि मै अमुक कार्य्य कर रहा हूँ।

सम्यक् समाधि—शुभ-कर्मो के करने मे चित्त की एकाग्रता।

पृ० २०. ब्रह्मचर्य्य=श्रेष्ठ जीवन

पृ० २१ दुराचरण—प्रत्येक वह कृत्य जिसका हमारे जीवन पर वुरा असर पडता है और जिसका हमे दु खमय परिणाम भोगना पडता है, दुराचरण कहलाता है।

जीव-हिंसा—जान वूझ कर किसी भी प्राणी की हिंसा करना—चाहे वह किसी उद्देश्य से हो—जीव-हिसा है।

मिथ्या-दृष्टि—दान-पुण्य सव व्यर्थ है, न अच्छे कर्म का अच्छा फल होता है, न वुरे, का वुरा, आदि विचार।

मन के कृत्य—चेतना=मन का कर्म ही वास्तव मे कर्म है। यही शारीरिक कृत्य के रूप मे प्रगट होता है, यही वाणी के कृत्य के। शारीरिक और वाणी के कृत्यो के रूप मे न प्रगट होने की अवस्था मे हम उसे मन के कृत्य (=मनोकम्म) कहते है।

पृ० २२. मोह—लोभ और द्वेप कभी विना मोह=मूढता के नही होता।

सम्यक्-दृष्टि—(१) लोकोत्तर-सम्यक्-दृष्टि और लोकिय-सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-दृष्टि के यह दो भेद है। इनमे से प्रथम सम्यक्-दृष्टि केवल श्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी तथा अर्हत् व्यक्तियो को होती है। जिसकी मुक्ति-प्राप्ति निश्चित है, उसे श्रोतापन्न, जिसे ससार मे (केवल) एक जन्म और धारण करना है, उसे सकृदागामी, जिसे और एक भी जन्म धारण नही करना है, वह अनागामी तथा जो जीवन्मुक्त हो गया है, उसे अर्हत् कहते है।

पृ० २३ पृथग्जन—श्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी, तथा अर्हत्—ये सव आर्य-जन कहलाते है। इनके अतिरिक्त दूसरे सव आदमी पृथग्जन।

सत्यकाय-दृष्टि—काय को सत् समझने की दृष्टि। इसके दो रूप हो सकते हैं (१) भव-दृष्टि=उच्छेद दृष्टि, यह विश्वास कि जन्म से मृत्यु पर्य्यन्त का जीवन ही मेरा अस्तित्व है, और मृत्यु होने पर इसका उच्छेद हो जायगा (२) विभव-दृष्टि—यह विश्वास कि शरीर से विल्कुल स्वतन्त्र "आत्मा" नाम की सत्ता है, जो मरने के अनन्तर भी वनी रहती है।

शील-व्रत-परामर्श—धार्मिक क्रिया-कलाप (व्रत आदि) को मोक्ष का उपाय मानना पृ० २४

यह आत्म . . रहेगा—श्रीमद्भगवद्गीता की यही शिक्षा है—

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्य सर्वगत स्थाणुरचलोऽय सनातन ॥२२४॥

यह आत्मा न काटी जा सकती है, न जलाई जा सकती है, न गलाई जा सकती है, न सुखाई जा सकती है। यह नित्य, सर्व व्यापक स्थिर अचल और सनातन है ॥२–२४॥

तीनो बन्धन—दस सयोजन (=बन्धन) मनुष्य को जन्म मरण के चक्र से बाँधे रहते है। वे है—(१ सत्काय-दृष्टि, (२) विचिकित्सा, (३) शील-व्रत परामर्श, (४) काम-राग, (५) व्यापाद (=क्रोध), (६) रूप-राग (=रूप लोक मे उत्पत्ति की इच्छा), (७) अरूप-राग (=अरूप लोक मे उत्पत्ति की इच्छा) (८) मान (=अभिमान), (९) उद्धता (=एकाग्रता का अभाव), (१०) अविद्या। पृ० २५

धर्म—(१) अस्तित्व (२) मनेन्द्रिय के विपय पृ० २६

रात को और ही—वास्तव मे पुद्गल=व्यक्ति के अस्तित्व का समय वहुत ही थोडा है, केवल एक चित्त क्षण भर। ज्यो ही चित्त-क्षण निरुद्ध होता है, व्यक्तित्व भी उसके साथ निरुद्ध होता है। "भविष्य का व्यक्तित्व भविष्य मे होगा, न वर्तमान मे है, न अतीत पृ० २६

मे था। वर्तमान का व्यक्तित्व वर्तमान मे है, न भविष्य मे होगा, न अतीत में था। अतीत का व्यक्तित्व अतीत मे था, न वर्तमान मे है, न भविष्य मे होगा।" (विशुद्धिमार्ग)

पृ० २९ प्रतीत्य-समुत्पाद—प्रत्ययों मे उत्पत्ति का नियम। बौद्ध धर्म कभी "एक कारण' से सृष्टि की उत्पत्ति नहीं मानता। प्रत्येक "एक कारण" के भीतर उसे "कारण सामग्री" दिखाई देती है।

पृ० ३० तथागत फँसते नही—यथार्थ दृष्टि मे व्यक्ति क्या है ? शारीरिक और मानसिक अवस्थाओं का एक संसरण-मात्र। व्यक्ति=मैं या बुद्ध भी कही है ही नहीं

पृ० ३२ नैष्क्रम्य-संकल्प—काम-भोग के जीवन को त्याग, काम-भोग वासना से रहित जीवन व्यतीत करने का संकल्प।

अव्यापाद संकल्प—ऐसा संकल्प जिसमे क्रोध का लेश न हो।

अविहिंसा संकल्प—ऐसा संकल्प जिसमे निर्दयता का लेश न हो।

पृ० ३६ बोधि के सात अंग—बुद्धत्व-प्राप्ति के यह सात अंग न केवल आर्य-व्यक्तियों (=श्रोतापन्न, सकृदागामी आदि) मे ही पाये जाते हैं, बल्कि किसी हद तक साधारण पृथग्जनों मे भी। देखो पृ० ४६

पृ० ३७ समाधि-निमित्त—योग-अभ्यासी भिक्षु के योग-अभ्यास के फल-स्वरूप उत्पन्न हुआ आकार-विशेष (=object)

पृ० ३८ सम्यक्-स्मृति—शारीरिक तथा मानसिक क्रियाओं के प्रति निरन्तर बनी रहने वाली जागरूकता।

पृ० ३८. काया—रूप-काया (material existence)

पृ० ३९ काया—श्वास-प्रश्वास का ग्रहण।

काया है—'वह समझता है कि यह केवल 'काया है', यह कोई व्यक्ति नहीं, स्त्री नहीं, पुरुष नहीं, आत्मा नहीं, आत्मा का नहीं" (अट्ठकथा)

जिस जिस . . जानता है—योगाभ्यासी समझता है कि यहाँ जा वाला, खडा होने वाला, बैठने वाला व्यक्ति-विशेष कोई नही है यह जो हम कहते है—"मै जाता हूँ", "मै खडा होता हूँ", "म बैठता हूँ" आदि यह केवल कहने का एक तरीका है।

सघाटी—भिक्षुओ के तीन चीवरो मे से एक चीवर।

पृ० ४० गो-घातक—पुराने समय मे गो-घात वा गो-घातक की उपमा एक साधारण उपमा थी।

पृ० ४१ चारो चैतसिक ध्यान—प्रथम-ध्यान, द्वितीय-ध्यान, तृतीय-ध्यान, तथा चतुर्थ ध्यान। देखो पृ० ४९।

ऋद्धियाँ—असाधारण शक्तियाँ। ऋद्धियो को असम्भव न मान कर, एक वैज्ञानिक की दृष्टि से उनका तजुर्बा करने मे तो विशेष हर्ज नही, लेकिन अन्धी-श्रद्धा के साथ ऋद्धियो के पीछे हैरान होना सचमुच नादानी है। 'ऋद्धियाँ' सम्भव है ही, ऐसा व्यक्तिगत अनुभव से कहने वाले कितने है, यदि सम्भव हो भी तो भी उन की विशेष उपयोगिता क्या है ?

पृ० ४३ वेदनाओ में वेदनानुपश्यी—वेदना के तीन प्रकार है—(१) सुखा-वेदना=अनुकूल अनुभूति, दुखा-वेदना=प्रतिकूल अनूभूति, न सुखा न दुखा वेदना=ऐसी अनुभूति जिसके वारे मे यह कहा न जा सके कि यह अनूकूल वेदना है वा प्रतिकूल।

चित्त—चित्त का मतलव है विज्ञान-स्कन्ध।

भीतरी चित्त—अपने भीतर का चित्त।

धर्मो—यहाँ धर्मो से मतलव है सज्ञा-स्कन्ध और सस्कार-स्कन्ध से। सम्यक्-स्मृति मे रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार तथा विज्ञान—यह पाँचो स्कन्ध ध्यान के विषय है।

पृ० ४४ पाँच नीवरणो—(१) कामच्छन्द, (२) व्यापाद, (३) स्त्यान मृद्ध, (४) औद्धत्य-कौकृत्य (५) विचिकित्सा—यही पाँच नीवरण है।

कामच्छन्द—अनागामी होने की ही अवस्था मे इसका सर्वथा नाश होता है।

औद्धत्य—अर्हत् होने की ही अवस्था मे मानसिक चचलता (=औद्धत्य) का सर्वथा नाश होता है।

विचिकित्सा—श्रोतापन्न होने की अवस्था मे ही सशयो का सर्वथा नाश हो जाता है।

पृ० ४५ सयोजन—चक्षु ओर रूप के हेतु से आदमी के लिए वधन (=सयोजन) पैदा होता है।

पृ० ४८. समाधि—समाधि के दो भेद किये जाते हैं—(१) उपचार-समाधि (समाधि के समीप की अवस्था), (२) अर्पणा-समाधि (=सम्पूर्ण समाधि)। यह आवश्यक नहीं कि निर्वाण-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने वाले मनुष्य को चारो ध्यान की भी प्राप्ति हो ही, और न ही केवल उपचार-समाधि या अपर्णा समाधि के वल पर कोई श्रोतापन्न आदि हो मकता है। श्रोतापन्न आदि तो होता है केवल विपश्यना द्वारा—जिसका मतलव है मसार को अनित्य-स्वरूप, दु ख-स्वरूप तथा अनात्म-स्वरूप देख सकने की शक्ति। लेकिन हाँ यह विपश्यना केवल उपचार-समाधि की अवस्था मे प्राप्त होती है। इसलिए यदि किसी ने ध्यान-प्राप्त कर लिए हैं, तो भी उसे विपश्यना के लिए उपचार-समाधि की अवस्था मे आना होगा।

जो विना किसी ध्यान की प्राप्ति के क्लेशो को नष्ट करता है, उसे सुख विपश्यक कहते हैं, जो ध्यानो के द्वारा प्राप्त अन्दरूनी शान्ति (=शमथ) की सहायता से क्लेशो को नष्ट करता है, उसे समथ-यानक कहते है।

पृ० ५०. आकाशानन्त्यायतन—आकाश (=Space) के अनत होने का भाव।

विज्ञानानन्त्यायतन—विज्ञान (=Consciousness) के अनत होने का भाव।

आकिञ्चन्यायतन—'कुछ (सार) नही है' का भाव।

पृ० ५१. सज्ञा की अनुभूति के निरोध—यह सज्ञा-हीनता अथवा किसी ध्यान की अवस्था सात दिन तक वरावर वनी रह सकती है।

छात्रहितकारी पुस्तकमाला
दारागंज, प्रयाग की
अनुपम पुस्तकें

१—ईश्वरीय-बोध—परमहंस स्वामी रामकृष्णजी के उपदेश भारत में ही नहीं, संसार भर में प्रसिद्ध है। उन्हीं के उपदेशों का यह संग्रह है। श्रीरामकृष्णजी ने ऐसी मनोरंजक और सरल, सब की समझ मे आने लायक बातों में प्रत्येक मनुष्य को ज्ञान कराया है कि कुछ कहते नहीं बनता। प्रत्येक उपदेश पढ़ते समय ऐसा मालूम होता है मानो कोई कहानी पढ़ रहे हैं। परिवर्द्धित संस्करण का मूल्य सिर्फ ॥|)

२—सफलता की कुञ्जी—अमेरिका, जापान आदि देशों मे वेदान्त का डंका पीटने वाले तथा भारत-माता का मुख उज्ज्वल करने वाले स्वामी रामतीर्थ को सभी जानते हैं। यह पुस्तक उन्हीं स्वामी जी के Secret of Success नामक अपूर्व निबन्ध का अनुवाद है। मूल्य ।)

३—मनुष्य जीवन की उपयोगिता—मनुष्य जीवन किस प्रकार सुखमय बनाया जा सकता है? इसकी उत्तम रीति आप जानना चाहते है तो एक बार इसे पढ जाइये। कितने सरल उपायों से जीवन पूर्ण सुखमय हो जाता है, यह आपको इसी पुस्तक से मालूम होगा। यह मूल पुस्तक तिब्बत के प्राचीन पुस्तकालय मे थी, जहाँ के एक चीनी ने इसका अनुवाद चीनी भाषा मे किया। आज दिन योरप की प्रत्येक भाषा मे इसके हज़ारों संस्करण हो चुके है। डेढ सौ पेज की पुस्तक का मूल्य ॥=)

४—भारत के दशरत्न—यह जीवनियों का संग्रह है। इसमे भीष्म पितामह, श्रीकृष्ण, पृथ्वीराज, महाराणा प्रतापसिंह, समर्थ गुरुरामदास श्रीशिवाजी, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ के, जीवन-चरित्र बडी खूबी के साथ लिखे गये है। सचित्र का मूल्य ॥)

५—ब्रह्मचर्य ही जीवन है—इसको पढकर सच्चरित्र पुरुष तो सदैव के लिये वीर्यनाश से बचता ही है, किन्तु पापात्मा भी निःसंशय

पुण्यात्मा बन जाता है। व्यभिचारी भी ब्रह्मचारी बन जाता है। दुर्बल तथा दुरात्मा भी साधु हो जाता है। जो पुरुष अपने को औषधियों का दास बनाकर भी जीवन लाभ नहीं कर सका है, उसे इस पुस्तक में बताये सरल नियमों का पालन कर अनन्त जीवन प्राप्त करना चाहिये। कोई भी ऐसा गृहस्थ या भारतपुत्र न होना चाहिये जिसके पास ऐसी उपयोगी पुस्तक की एक प्रति न हो। दसवें संस्करण का मूल्य ॥)

६—वीर राजपूत—अप्राप्य मू० १)

७—हम सौ वर्ष कैसे जीवें—भारतवर्ष मे औषधालयों और औषधियों की कमी नहीं, फिर भी यहाँ के मनुष्यों की आयु अन्य देशों की अपेक्षा सबसे कम क्यों है? औषधियों का विशेष प्रचार न होते हुये भी हमारे पूर्वजों की आयु सैकड़ों वर्ष कैसे होती थी? एक मात्र कारण यही है कि हमारे खाने पीने, उठने बैठने के व्यवहारों मे वर्तने योग्य कुछ ऐसे नियम हैं जिन्हे हम भूल गये हैं "हम सौ वर्ष कैसे जीवें?" को पढ कर उसके अनुसार चलने से मनुष्य सुखों का भोग करता हुआ १०० वर्ष तक जीवित रह सकता है। मूल्य १)

८—वैज्ञानिक कहानियाँ—महात्मा टाल्स्टाय लिखित वैज्ञानिक कहानियाँ, विज्ञान की शिक्षा देनेवाली तथा मनोरंजक पुस्तक मूल्य।)

९—वीरो की सच्ची कहानियाँ—यदि आपको अपने प्राचीन भारत के गौरव का ध्यान है यदि आप वीर और बहादुर बनना चाहते है, तो इसे पढिये। इसमें अपने पुरुषाओं की सच्ची वीरता-पूर्ण यश गाथायें पढ कर आपका हृदय फडक उठेगा, नसों मे वीर रस प्रवाहित होने लगेगा, पुरुषाओं के गौरव का रक्त उबलने लगेगा। मूल्य केवल ।।=)

१०—आहुतियाँ—यह एक बिलकुल नये प्रकार की नयी पुस्तक है। देश और धर्म पर बलिदान होने वाले वीर किस प्रकार हँसते हँसते मृत्यु का आवाहन करते है? उनकी आत्मायें क्यों इतनी प्रबल हो जाती है? वे मर कर भी कैसे जीवन का पाठ पढते हैं? इत्यादि दिल फडकाने वाली कहानियाँ पढ़नी हों तो "आहुतियाँ" आज ही मँगा लीजिये। हिन्दी

में ऐसा संग्रह कभी नहीं निकला था। एक एक कहानी वीर रस में सराबोर है। मूल्य केवल ॥।)

११—जगमगाते हीरे—प्रत्येक आर्य सन्तान के पढ़ने लायक यह एक ही नयी पुस्तक है। इसमें राजा राममोहन राय से लेकर आज तक के भारत प्रसिद्ध महापुरुषों की सचित्र जीवन दी गयी है। एक बार इस सचित्र पुस्तक को आप खुद पढ़िये और अपने स्त्री-बच्चों को पढ़ाइये। मूल्य केवल १)

१२—पढ़ो और हँसो—विषय जानने के लिये पुस्तक का नाम ही काफी है। एक एक लाइन पढ़िये और लोट-पोट होते जाइये। आप पुस्तक अलग अकेले मे पढ़ेंगे, पर दूसरे लोग समझेंगे कि आज किससे यह कहकहा हो रहा है। पुस्तक की तारीफ यह है कि पूरी मनोरंजक होते हुए भी अश्लीलता का कहीं नाम नहीं। यदि शिक्षाप्रद मनोरंजक पुस्तक पढ़नी है तो इसे पढ़िये। मूल्य ॥)

१३—मनुष्य शरीर की श्रेष्ठता—मनुष्य के शरीर के अंगों और उनके कार्य इस पुस्तक मे बतलाये गये हैं। इसके पढ़ने से आपको पता चलेगा कि हम अपनी असावधानी, तथा अपनी अनियमित रहन सहन से शरीर के अंगों को किस प्रकार विकृत कर डालते हैं। मूल्य ।=)

१४—एकान्तवास—अप्राप्य मू० ॥।)

५१—पृथ्वी की अन्वेषण की कथायें—अप्राप्य १)

१६—फल उनके गुण तथा उपयोग—पुस्तक का विषय नाम ही से प्रकट है। अभी तक इस विषय पर हिन्दी में क्या भारत की किसी भषा में भी कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई। यह बात निर्विवाद है कि फलाहार सब से उत्तम और निर्दोष आहार है। महात्मा गांधी फल पर ही रहते हैं। भारतीय ऋषि फलाहार ही से हजारों वर्ष जीवित रहते थे, रोग उनके पास नहीं फटकता था। अस्तु आप अपने तन मन और आत्मा को नीरोग रखना चाहे तो यह पुस्तक अवश्य पढ़ें। मूल्य केवल १)

१७—स्वास्थ्य और व्यायाम—यह अपने ढंग की हिन्दी में एक ही पुस्तक है। आज दिन व्यायाम के अभाव से नवयुवकों के स्वास्थ्य और

शरीर का किस प्रकार ह्रास हो रहा है, यह किसी से छिपा नहीं है। लेखक ने अपने निज के अनुभव तथा संसार-प्रसिद्ध पहलवान सैंडो, मूलर तथा प्रो० राममूर्ति के अनुभवों के आधार पर लिखा है। इसमें लड़कों और स्त्रियों के उपयुक्त भी व्यायाम बतलाये गये है। व्यायाम की विधि बताने के साथ ही साथ चित्र भी दिये गये है जिससे व्यायाम करने मे सहूलियत हो जाती है। मूल्य अजिल्द का १॥) तथा सजिल्द का २)

१८—धर्मपथ—प्रस्तुत पुस्तक मे महात्मा गाँधी के ईश्वर, धर्म तथा नीति सम्बन्धी लेखों का संग्रह किया गया है जिन्हें उन्होंने समय समय पर लिखे हैं। यह सभी जानते है कि महात्मा गाँधी केवल राजनीतिक नेता ही नहीं, वरन् वर्तमान युग के धार्मिक सुधारक तथा युगप्रवर्तक हैं। ऐसे महात्मा के धार्मिक विचारों से परिचित होना प्रत्येक धर्मावलम्बी का परम कर्त्तव्य है। मू० ॥)

१९—स्वास्थ्य और जलचिकित्सा—जलचिकित्सा के लाभों को सब लोगों ने एक स्वर से स्वीकार किया है। इस विषय पर जनसाधारण के लिये कोई उपयोगी पुस्तक न थी। जो दो एक पुस्तकें हैं भी उनका मूल्य इतना अधिक है और वे इतनी क्लिष्ट भाषा मे लिखी गई हैं कि सर्वसाधारण का उनसे लाभ उठाना एक तरह से कठिन ही है। परन्तु प्रस्तुत पुस्तक सब के लिये बहुत उपयोगी है। मू० १॥)

२०—बौद्ध कहानियाँ—महात्मा बुद्ध का जीवन और उपदेश कितने महत्वपूर्ण, पवित्र और चरित्र-निर्माण मे सहायक हैं, इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं। इस पुस्तक में उन्हीं महात्मा के जीवन के उपदेश कहानियों के रूप मे दिये गये गए है। उनकी घटनायें सच्ची है। प्रत्येक कहानी रोचक और सुन्दर ढग से लिखी गई है। पुस्तक विद्यार्थियों तथा नवयुवकों को विशेष उपयोगी है। सचित्र पुस्तक का मू० १) है।

२१—भाग्य-निर्माण—आज बहुत से नवयुवक सब तरह से समर्थ और योग्य होने पर भी अकर्मण्य हो भाग्य के भरोसे बैठे रहते हैं। कोई उद्यम या परिश्रम का कार्य नहीं करते। फल-स्वरूप वे अपने लिये तथा घरवालों के लिये बोझ हो जाते हैं। यह पुस्तक विशेषकर ऐसे

नवयुवकों को लक्ष्य करके लिखी गई है। इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ के पढ़ने से नवयुवकों मे उत्साह, स्फूर्ति तथा नवजीवन प्राप्त होगा। इस पुस्तक के लेखक हैं हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान तथा जयपुर हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज ठाकुर कल्याणसिंह जी बी० ए०। सुन्दर जिल्द से युक्त पुस्तक का मूल्य १॥।) है।

२२—वेदान्त धर्म—इसमे देश-विदेश में वेदान्त का झंडा फहराने वाले स्वामी विवेकानन्द के भारतवर्ष मे वेदान्त पर दिये हुये भाषणों का संग्रह है। ये वे ही व्याख्यान हैं, जिनके प्रत्येक शब्द में जादू का सा असर है। पढ़ते समय ऐसा जान पडता है, मानो उनका प्रत्यक्ष भाषण सुन रहे हों। स्वामी जी के भाषण कितने प्रभावशाली, जोशीले और सामयिक है, इसे बतलाने की आवश्यकता नही। आध्यात्मिक विषयों की रुचि रखने वालों को इसे अवश्य पढना चाहिये। मू० १।)

२३—पौराणिक महापुरुष—आजकल हमारे बच्चे स्कूलों में विदेशी महापुरुष के ही चरित पढते हैं। परिणाम यह होता है कि उन पर विदेशी आदर्शों की छाप पड जाती है, वह अपने भारतीय संस्कृति और धर्म से दूर होजाते हैं। इस पुस्तक मे हरिश्चन्द्र, शिवि, दधीच आदि महापुरुषों की जीवन कथायें संक्षेप में दी गई हैं। जिन्होंने सत्य, दया धर्म के लिये अपनी आहुति दे दी थी। मू० ॥।)

२४—मेरी तिब्बत यात्रा—इसके लेखक भारतीय पुरातत्व के अन्वेषक त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन है। लेखक ने अभी हाल ही में तिब्बत की यात्रा की थी। इस पुस्तक मे तिब्बत के अनोखे रीति रिवाज, वहाँ की रहन-सहन तथा धार्मिक सामाजिक रूढ़ियों पर काफी प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक से नेपाल के विषय मे भी काफी बातें मालूम होती है। पुस्तक पढ़ने मे उपन्यास का सा मजा आता है। पुस्तक पत्रों के रूप मे है। मू० १।)

२५—दूध ही अमृत है—दूध की उपयोगिता को कौन प्राणी स्वीकार न करेगा। जब बच्चा जन्म लेता है, दूध ही द्वारा उसकी जीवन रक्षा होती है। ऐसे जीवन रक्षक दूध के सम्बन्ध मे अंगरेजी आदि विदेशी

भाषाओं में सैकड़ों पुस्तकें है, परन्तु हिन्दी मे कोई ऐसी पुस्तक न थी, जिसमे दूध के पोषक तत्वों, इसके पीने से लाभ तथा इससे क्या २ वस्तुयें तैयार हो सकती हैं, आदि बातों का वर्णन हो। इसी कमी को दूर करने के लिये इस पुस्तक की रचना की गई है। अगर आप दूध के वास्तविक गुणों को जानना चाहते हों, तो इसे अवश्य पढें। मू० १॥)२)

२६—अहिंसाव्रत—जे० महात्मा गांधी है जो अहिंसा को परम धर्म मानते हैं। उनका सारा सिद्धांत इसी पर अवलम्बित है। अगर आप अहिंसा के वास्तविक मर्म को जानकर अपना जीवन पवित्र और शुद्ध बनाना चाहते है तो इस पुस्तक को पढ़ें। इस पुस्तक मे उन सब लेखों का संग्रह किया गया है, जिन्हे महात्मा जी ने समय २ पर लिख कर पाठकों की शंकाओं, उनकी उलझनों को दूर किया है। मू० ॥)

२७—पुण्यस्मृतियाँ—इसके लेखक भी महात्मा गाधी है। इस ग्रन्थ मे महात्मा जी ने महात्मा टाल्सटाय, लोकमान्य तिलक, महामना गोखले, सुकरात, देशबन्धुदास, लाला लाजपत राय आदि देशी तथा विदेशी महापुरुषो के प्रति श्रद्धाजालियॉ अर्पित की हैं। इस ग्रन्थरत्न के सम्बन्ध मे अधिक लिखना व्यर्थ है, जब स्वय महात्मा जी की पावन लेखनी से महापुरुषो की पावनगाथा लिखी गई है। आप भी इसे पढ़ कर अपनी आत्मा को उच्च और पवित्र बनाइये। मू० ॥।)

साहित्य सरोजमाला की पुस्तकें:—

१—पतिता की साधना—इस उपन्यास का कथानक बिल्कुल नये ढंग का है जो अभी तक हिन्दी के किसी उपन्यास मे नही मिल सकता। इसकी अत्यन्त रोचकता और अद्भुत रचना-प्रणाली देकर पाठकों का कुतूहल उत्तरोत्तर इतना बढ जाता है कि इसे समाप्त किये बिना किसी काम मे जी लगना तो दूर, खाना-पीना तक दुर्लभ हो जाता है। मू० २)

२—अवध की नवाबी—यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमे लखनऊ के घोर विलासिता मे मग्न नवाब की लास्यलीला, उनका प्रजा-पीड़न का रोमांचकारी वर्णन है। उस समय कोई सुव्यवस्थित शासन न

होने से देश भर में, ठग डाकुओं का किस प्रकार दौर-दौरा था, नवाब के कर्मचारी किस प्रकार बहू-बेटियों की इज्जत बर्बाद करते थे, प्रजा का सर्वस्व अपहरण कर उन्हें दर-दर का भिखारी बना देते थे, इसे पढ़कर पत्थर का हृदय भी पिघल जायगा। आपको स्वर्ग और नर्क का दृश्य साथ ही देखना हो तो इस उपन्यास को अवश्य ही पढ़ें। सुन्दर नयनाभिराम चित्र से युक्त पुस्तक का मू० २)

३—मफलीरानी—मनुष्य में जब कभी जीवन-रस की प्यास भड़कती है, तब वह कैसा अन्धा हो जाता है, कामना की अग्नि में जली-भुनी नारी भी अवसर आने पर अपना कलेजा किस तरह ठंडा करती हैं, जीवन के कोमल मधुर मिलन कितने प्राण-प्रद होते हैं, आदर्श नारी के हृदय में कितना प्यार, कैसा दर्प और कैसी दृढ़ न्याय-बुद्धि होती है और अन्त तक वह अपने आराध्य के साथ-साथ अपने जीवन का कैसे उपसर्ग करती है ये सब बातें इस उपन्यास में ऐसी जीवित भाषा, सुन्दर दृश्यों तथा अद्भुत घटनाओं के झकोरों में इतनी मनोहर शैली से बताई गयी है कि पाठक को पढ़ते-पढ़ते चकित कर डालती है। पृष्ठ संख्या लगभग तीन सौ, तिरंगा कवर, मू० २)

स्त्रियोपयोगी दो अनुपम पुस्तकें:—

१—स्त्री और सौन्दर्य—यौवन और सौन्दर्य स्त्रियों के लिए परमात्मा की अनुपम देन है। परन्तु स्त्रियाँ अपनी असावधानी तथा अज्ञानता से २०-२२ वर्ष तक पहुँचते पहुँचते इससे हाथ धो बैठती हैं और जीवन भर शारीरिक और मानसिक कष्ट भोगती रहती हैं। प्रस्तुत पुस्तक सभी स्त्रियों के लिये बड़े काम की है चाहे वह युवावस्था में प्रवेश कर रही हों अथवा अपनी असावधानी से जिन्होंने यौवन को नष्ट कर डाला हो। इस पुस्तक में सौन्दर्य और स्वास्थ्य रक्षा के लिये ऐसे सुगम साधन तथा सरल व्यायाम बतलाये गये हैं जिनके नियमित रूप से बर्तने से ४० वर्ष की अवस्था तक भी स्त्रियाँ सुन्दरी और स्वस्थ बनी रह सकती हैं। मू० ३)

२—पाकविज्ञान—इसकी लेखिका ज्योतिर्मयी ठाकुर हैं। लेखिका

है। इसमे स्त्रियों के लिये विविध प्रकार के व्यंजनों की सरल और सुबोध विधि लिखी है। अगर आप अपनी बहू-बेटी तथा बहन को सद्गृहिणी बनाना चाहते हैं तो उनको इसकी एक प्रति खरीद कर अवश्य दीजिये। मू० ३)

साहित्य सुमनमाला की पुस्तकें—

१—मदिरा—हिन्दी के उदीयमान लेखक पं० तेजनारायण काक 'क्रांति' की अद्भुत लेखनी द्वारा लिखा गया यह सुन्दर गद्य-काव्य है। प्रत्येक लाइन पढ़ते समय पद्य का सा आनन्द मिलता है। यदि आप सरस साहित्य के प्रेमी हैं, तो इसे अवश्य पढ़िये। मू० १) है।

२—कवितावली रामायण—कवि-सम्राट गोस्वामी तुलसीदास की इस अमर रचना से कौन परिचित नहीं है। परीक्षार्थियों के लाभार्थ इसके कठिन शब्दों के अर्थ, पद्यों का सरलार्थ तथा पद्यों के मुख्य अलंकार भी बतलाये गये हैं विस्तृत भूमिका भी दी गई है जिसमे गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन पर पूरा प्रकाश डालते हुए कवितावली की निष्पक्ष आलोचना की गई है। भूमिका लेखक है प्रसिद्ध विद्वान पं० उदयनारायण त्रिपाठी मू० १॥)

३—भग्नावशेष—इसके लेखक प्रसिद्ध नाटककार 'कुमारहृदय' है जिनके नाटकों को हिन्दी जगत अच्छी तरह अपना चुका है। यह नाटक आपके पूर्व लिखित नाटकों से कही सुन्दर है। इसमें वीर रस और करुण रस का अच्छा परिपाक हुआ है। इसके पढने से भारत के प्राचीन गौरव की झलक आँखों के सामने स्पष्ट दिखलाई पडती है। मूल्य ॥=)

४—गुप्तजी की काव्य धारा—ले० श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' बी० ए०—आधुनिक हिन्दी-साहित्य मे बाबू मैथिलीशरण गुप्त का एक विशेष स्थान है। लगभग तीस वर्षों तक विविध काव्य पुस्तकों की रचना कर के गुप्तजी ने हिन्दी-संसार को वह अमूल्य निधि प्रदान की है, जिस पर समस्त हिन्दी-भाषियों को उचित गर्व है। 'गुप्तजी की काव्य-धारा' नामक आलोचनात्मक ग्रंथ में गुप्तजी के प्रायः सम्पूर्ण साहित्यिक कृतियों का एक सुन्दर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। मू० २)

मैनेजर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग।